मधुसूदन सरस्वती

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ–रानी के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

मधुसूदन सरस्वती

दीनानाथ त्रिपाठी

संस्कृत से अनुवाद
रेखा व्यास

साहित्य अकादेमी

Madhusudana Saraswati : Hindi translation by Rekha Vyas of Dinanath Tripathi's monograph *Madhusudana Saraswati Charitam* in Sanskrit, Sahitya Akademi, New Delhi (1997) Rs. 15.

प्रथम संस्करण : 1997

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

109, ए.डी.ए. रंगमन्दिर, जे. सी. मार्ग, बंगलोर 560 002

ISBN 81-260-0258-1

मूल्य : पच्चीस रुपये

शब्द संयोजक एवं मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

1

वंश-परिचय

नत्वा द्वैतपथाम्भोजभास्करं शङ्करं गुरुम्
तद्दर्शितसृतिव्याख्याकृतो नौमि गुरून् सदा।
श्रीविश्वेश्वरशिष्यस्य मधुसूदनवाक्पतेः
नत्वा पदद्वयं कुर्वे तच्चरित्रोपवर्णनम् ॥

अद्वैतपथ रूपी कमल को विकसित करनेवाले सूर्य रूपी भगवान् शंकर को (शंकराचार्य को) गुरुवत् प्रणाम करके मैं उनके द्वारा दिखायी गई व्याख्याओं को करने वाले किंवा लिखनेवाले विद्वान् गुरुओं को सदा प्रणाम करता हूँ। श्री विश्वेश्वरजी के शिष्य विद्वान् मधुसूदनजी के चरण-युगलों में नमस्कार करके मैं उनके चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ—

दूसरे देशों से भारतवर्ष की असाधारणता अनेक गुणों के कारण आज भी है। प्राचीन काल से अद्यावधि यह अक्षुण्णता बनी हुई है। यह भी निर्विवाद है कि प्राचीन काल से भारतवर्ष का कृषि प्रधान अत्यन्त सरल जीवन और मनुष्यों के चरित्र नीति सम्पत्ति के अभ्युदय एवं धन-धान्य की समृद्धि इत्यादि विविध सम्पत्ति अनेक विदेशियों को अपनी ओर आकृष्ट करती रही है। शक, हूण, यायावर, पठान, मुग़ल और अंग्रेज़ यहाँ भारत में अपने बार-बार किये गये छल-बल से देश पर अधिकार करके भारतीयों को कष्ट पहुँचाते रहे हैं। प्रायः ग्यारहवीं शताब्दी में मुसलमान आक्रामकों ने भारत आकर जब दिल्ली के निकटवर्ती बहुत से भारतीय राज्यों पर अपने अधिकार करके अपने शासन को स्थापित करने में सफल हुए तब बहुत से कान्यकुब्ज ब्राह्मण धर्मनाश के भय से इकट्ठे होकर उस प्रदेश को छोड़कर हिन्दू राज्य मिथिलाधीश्वर तथा गौडाधीश्वर के राज्य में आकर वहाँ रहने लगे। उन हिन्दू राजाओं ने उन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को सादर भूमि-सम्पत्ति प्रदान करके वहाँ बसाया। अनुमान है कि 1194 ई. में कान्यकुब्ज कश्यप गोत्रोत्पन्न अग्निहोत्री श्री राम मिश्र नामक किसी वेदविद् ब्राह्मण ने शहबुद्दीन गौरी के अत्याचार से अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने लोगों के साथ

बंगाल के देश के अंतर्गत नवद्वीप में आकर सर्वप्रथम निवास किया। उन दिनों बंगाल में मुसलमानों का शासन नहीं था। तत्पश्चात् वह ब्राह्मण फरीदपुर मण्डल के अंतर्गत कोटालिपाड़ा नामक क्षेत्र में रहने लगा। तब से कोटालिपाड़ा वैदिक ब्राह्मणों की निवास भूमि के रूप में परिणत हो गया और वहाँ समय-समय पर बहुत सारे विद्वान् ब्राह्मणों का आविर्भाव हुआ।

लक्ष्मण वाचस्पति ने *पाश्चात्य संहिता* में कहा है :—

"अशेषषड्दर्शनदर्शनात्मा यशोदयालङ्कृतमूर्तिरेको
जितेन्द्रियः काश्यपवंशदीपः श्रीराममिश्रेतिसमाख्यः विप्रः।
तत् काण्वकुब्जं परिहायं विप्रास्तदा नवद्वीपसमीपदेशनव-
ग्रामेष्वनेकेषु परस्परं ते सम्बद्धबद्धाः समसवन्ति सर्वे ॥" इति

सभी छः दर्शनों के पारंगत आत्म-बल कीर्ति और दयायुक्त एक जितेन्द्रिय ब्राह्मण भी राम मिश्र के नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं। वे काश्यप वंश के दीपक थे। वे कान्यकुब्ज को छोड़कर नवद्वीप में पहुँचकर अनेक नये गाँवों में आपस में सम्बन्ध स्थापित रखते हुए रहते थे।

श्री राम मिश्र के पुत्र माधव मिश्र थे। माधव मिश्र के पुत्र गोपाल मिश्र थे जिनके गणपति मिश्र नामक पुत्र हुआ। गणपति मिश्र के सनातन मिश्र नामक पुत्र हुए। सनातन मिश्र के कृष्ण गुणार्णववेदाचार्य नामक पुत्र हुए। जिनके प्रमोदनपुरन्दराचार्य नामक आत्मज हुए। वे कोटालिपाड़ा के अन्तर्गत आने वाले ग्राम उनसिया में निवास करते थे। वे तेजस्वी नानाशास्त्रों में पारंगत सदाचारपरायण और क्रियाशील थे। उनसिया ग्राम में चतुष्पाठी परम्परा की प्रतिष्ठापना करके यथानियम शिष्यों को शास्त्राध्ययन कराते थे। मधुसूदन इन्हीं के पुत्र थे। किस शक या ईस्वी में मधुसूदन का जन्म हुआ यह अभी भी निश्चित नहीं हुआ है। इनकी जन्मपत्रादि कुछ की प्राप्त नहीं हुई। फिर भी पूर्व बंग प्रान्त के बांग्लादेश में फरीदपुर मण्डल के कोटालिपाड़ा परगने के उनसिया गाँव में 1525 से 1550 ईस्वी के बीच में वैदिक ब्राह्मण पंडित प्रमोदनपुरन्दराचार्य के तृतीय पुत्र के रूप में मधुसूदन सरस्वती का जन्म हुआ। ऐसा उनके वंशोत्पन्न सीतानाथ सिद्धान्त वागीश, हरिदास सिद्धान्त वागीश कालोपदतकाचार्यादि द्वारा लिखित (काल-विषयक) लेखों से ज्ञात होता है, एवं सुना जाता है।

बारह वर्ष की उम्र में संन्यास के लिए अपने घर से बाहर निकल कर श्री चैतन्यमहाप्रभु की शरण में जाने की इच्छा से जब नवद्वीप पहुँचे तब उन्होंने सुना कि चैतन्य महाप्रभु पुरी क्षेत्र में प्रस्थान कर गये हैं। 1475 ईस्वी की फाल्गुन पूर्णिमा को श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हुआ—वे 24 वर्ष की अवस्था में संन्यास ग्रहण करके कुछ महीनों के पश्चात् पुरी जगन्नाथ क्षेत्र में रहे। अतः अनुमान किया जाता है कि मधुसूदन 1525 ईस्वी से 1530 ईस्वी के मध्य फरीदपुर मण्डल के अन्तर्गत

कोटालिपाड़ा परगना के उनसिया ग्राम में उत्पन्न हुए यद्यपि मधुसूदन सरस्वतीकृत प्रकाशित ग्रन्थों में किसी भी ग्रन्थ में उनका रचना काल वर्णित नहीं है तथापि वाराणसी के महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज द्वारा संगृहीत हस्तलिखित पुस्तिकाओं में *सिद्धान्त-बिन्दु* नामक पुस्तिका में रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है— 'नवाग्निबाणेन्द्रमितिशकाब्दे' आदि। अर्थात् नव-9, अग्नि-3, बाण-5 तथा इन्द्र-1। इससे स्पष्ट होता है कि वह *सिद्धान्त-बिन्दु* नामक ग्रन्थ 1539 शकाब्द में मधुसूदन द्वारा पूर्ण किया गया। शकाब्दी के अनुसार ईस्वी 78-79 वर्षों से पूर्व 1617 ईस्वी में मधुसूदन ने *सिद्धान्त-बिन्दु* ग्रन्थ निर्मित किया ऐसा अनुमान किया जाता है। *सिद्धान्त-बिन्दु* ग्रन्थ के अन्त में यह श्लोक है:—

बहुयाचनया मयायमल्पो बलभद्रस्य कृते कृतो निबन्धः।
यद्दुष्टमिहास्ति यच्चादुष्टं तदुदाराः सुधियो विवेचयन्तु ॥ इति

मैंने यह लघु पुस्तिका बलभद्र (शिष्य) द्वारा बहुत प्रार्थना करने पर उन्हीं के लिए लिखी है इस पुस्तक में गुण और दोष का विवेचन उदार विद्वान् करें। इससे तात्पर्य है कि बलभद्र नामक शिष्य की प्रार्थना से मधुसूदन ने *सिद्धान्त-बिन्दु* ग्रन्थ की रचना की यह इस श्लोक से ज्ञात होता है। शिष्यानुरोध से ग्रन्थ-रचना परिपक्व आयु में ही होती है। 90 वर्ष की अवस्था में मधुसूदन ने सिद्धान्त-बिन्दु की रचना की ऐसा अनुमान किया जाता है। वे 117 वर्ष तक जीए यह उस समय के संन्यासियों और मधुसूदन के वंशजों की ऐतिहासिक परम्परा से ज्ञात होता है। अतः अनुमान किया जाता है कि मधुसूदन 1525 ई. से 1530 ईस्वी के बीच में ही कभी उत्पन्न हुए थे।

प्रमोदनपुरन्दराचार्य के चार पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम यादव था। मध्यम के पश्चात् छोटे से पहले मधुसूदन तृतीय पुत्र थे। दो बड़े भाइयों के नाम अज्ञात हैं। यादव शास्त्रज्ञ और पण्डित थे।

प्रमोदनपुरन्दराचार्य के वंशज जब कोटालिपाड़ा में निवास करते थे तब बहिशाल के पास चन्द्रद्वीप नामक राजधानी में क्रमानुसार परमानन्द, जगदानन्द, कन्दर्प नारायण रामचन्द्र, कीर्तिनारायण, वासुदेवनारायण, प्रताप नारायण, प्रेम नारायण आदि राय उपाधि से अलंकृत हिन्दू राजाओं ने स्वाधीनता पूर्वक हिन्दू राज्य पर शासन किया।

कोटालिपाड़ा में (पूर्व पाकिस्तान) से पूर्व भी प्रमोदनपुरन्दराचार्य के नाम की गली थी। उस गली के उत्खनन के विषय में यह बात ज्ञात होती है कि कदाचित् उस गली के उत्खनन में जल नहीं निकला। यह देखकर प्रमोदनपुरन्दराचार्य विस्मित हुए। उसी रात्रि को उन्होंने स्वप्न देखा। किसी पुरुष ने प्रमोदनपुरन्दराचार्य के समीप आकर कहा—प्रमोदन! यदि तुम्हारा कोई पुत्र घोड़े पर चढ़कर दीर्घिका के मध्य जाय तो दीर्घिका से जल निकलेगा। प्रातः पुरन्दराचार्य ने सभी को स्वप्न सुनाया। उस स्वप्न को सुनकर प्रमोदनपुरन्दराचार्य का कनिष्ठ पुत्र घोड़े पर आरूढ़ होकर दीर्घिका के बीच

गया। उसके जाने से दीर्घिका के ऊपर जल आ गया और कनिष्ठ पुत्र ग्रसित कर लिया गया।

तब से कोटालिपाड़ा में प्रमोदनपुरन्दराचार्य की कीर्ति अभी भी है। तब से वहाँ प्रतिष्ठापित एक कालिकामूर्ति आज भी पूजित है।

वासभूमि

पुण्यसलिला भागीरथी सागर में समाहित होकर बहती हुई बंग देश में आकर दो भागों में विभक्त हो जाती है। उसमें से एक मुर्शिदाबाद मण्डल के बीच जाकर बीस परगणों में कालिकाता मण्डल में समुद्र में मिल जाती है और पद्मा नामक दूसरी शाखा में परिवर्तित होकर ब्रह्मपुत्र में मिलकर चट्टल प्रदेश में जाकर समुद्र में प्रविष्ट हो जाती है। फरीदपुर मण्डल के कोटालिपाड़ा परगना के सभी गाँव त्रिकोणाकार में बहुत सी नदियों से वेष्टिक समतल भूमि रूप में शस्य श्यामल मनोहर सुपारी-पान-जामुन-खजूर-आम-नारियल आदि फलवृक्षों से सुशोभित और जपा अपराजिता शतपत्र शेफालिका चमेली चम्पककामिनि आदि पुष्प वृक्षों से समन्वित वापी कुएं तडाग जलाशय आदि से बहुल हंस-सारस आदि पक्षियों के निनाद से पूर्ण भ्रमरों के श्रुति मनोहर गुंजन से पूरित छात्रों के वेद स्मृति पुराण इतिहास शास्त्रादि के उच्चारित शब्दों से वातावरण को अहर्निश पवित्र करते हुए लोगों को आनंदित करते थे।

भारत की तत्कालीन स्थिति

हुमायूँ और अकबर के शासनकाल में विशेषतः अकबर के शासनकाल में भारत के लगभग सभी प्रदेश मुग़ल शासन के अन्तर्गत थे। बंग देश के नवद्वीप पूर्व में हिन्दू राज्य में होते हुए भी क्रमशः मुग़ल शासन के अधीन हो गये। पूर्व बंग के तो कई खण्ड-अखण्ड तब भी हिन्दू राजाओं के अधीन थे। उनमें मधुसूदन का जन्म भी हिन्दू राज्य में हुआ। मधुसूदन जब वाराणसी गये तब कन्दर्प नारायण के पुत्र रामचन्द्र रामचन्द्रद्वीप के राजा थे। परन्तु तब दिल्लीश्वर अकबर के सेनापति तथा श्यालक (पत्नी के बड़े भाई) मानसिंह ने सारा बंग देश जीतकर शासन को दिल्लीश्वर के अधीन कर दिया था। बंग देश में कुछ भू-स्वामियों ने मुग़ल शासन की अधीनता स्वीकार पूर्व बंग में शासन किया। तब मुख्य शासक को वारभूइयाँ कहा जाता था।

फरीदपुर

फरीदपुर मण्डल में अथवा पूर्व बंग में ब्रह्म पुत्रादि नद पद्मा, मेघना, मधुमती और यमुना आदि नदियों की बहुलता थी। फरीदपुर भी पहले सागर निमग्न था ऐसा सुना

जाता है। सहस्र वर्ष पूर्व ब्रह्मपुत्रादि नद पद्मादि नदियों से संचित मिट्टी से फरीदपुर का जन्म हुआ। वर्षा में कोटालिपाड़ा के अन्तर्गत गाँव कृषिभूमि जलान्वित हो जाते हैं। नद-नदी नालों के भर जाने से गाँव के लोग नौका से आवाजाही करते थे। लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक नौका पार करके जाते हैं। स्थलपथ पूर्णतया अवरुद्ध हो जाता है। छोटे गाँव चारों ओर से जल परिधि से घिरे द्वीप तुल्य आभासित होते हैं।

किशोरावस्था

श्री मधुसूदन बाल्यावस्था से ही सुतीक्ष्ण बुद्धि प्रतिभावान् और शान्त स्वभाव के थे। किसी बात को एक ही बार सुनकर वे उसे याद रख लेते थे। सभी बाल्यावस्था की क्रीड़ाओं में भी उनकी असाधारण बुद्धि का चमत्कार अनुभव करते थे। बाल्यावस्था से ही वे ब्राह्मण गुरुजन विद्वान् आदि के प्रति सेवा निष्ठा सात्विक प्रवृत्ति एवं तप के वैभव से पूर्ण थे।

रामिश्रवंशीय प्रमोदनपुरन्दराचार्य विद्वान् सुकवि सर्वशास्त्रापारङ्गत धर्मनिष्ठान प्रिय विविध शास्त्रों का अध्ययन कराते हुए विषयों को ज्ञान राशि वितरित करते थे। पुत्र की मेघा और प्रतिज्ञा को देखकर पाँचवें वर्ष में उन्होंने उसके उपनयन संस्कार की व्यवस्था की।

मधुसूदन ने पाँचवें वर्ष से ग्यारह वर्ष तक व्याकरण काव्यादि शास्त्रों का पूर्ण अध्ययन किया। पिता से भी उन्होंने व्याकरणादि शास्त्र पढ़े। ग्यारहवर्षीय मधुसूदन ने काव्य रचना में भी अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया। गाँव के पंडित आत्मीय उसके मुख से कविता सुनने के लिए पुरन्दर के घर जाया करते थे। उस अल्पायु में ही मधुसूदन असाधारण प्रतिभा बल से शीघ्र सुमधुर कविता रचकर सबको मोह लेते थे। वे श्रोता भी उसे बहुत आशीर्वाद देते थे। दिनों-दिन वे जैसे-जैसे विद्वान् होते गये वैसे-वैसे बालसुलभ चपलता को छोड़कर गम्भीर होते चले गये।

2

वैराग्य की प्रवृत्ति

प्राचीनकाल में जब हिन्दू राजाओं का राज्य था तो हिन्दू राजा ब्राह्मणों को असाधारण प्रतिभा पर निःशुल्क या अल्पशुल्क पर भूसम्पदा प्रदान करते थे। चन्द्रद्वीप के राजा कन्दर्पनारायण राम ने प्रमोदपुरन्दराचार्य को जीविका निर्वाह हेतु कुछ भूसम्पदा दी। उस भूमि के सम्बन्ध में कन्दर्पनारायण ने यह नियम बनाया कि भूसम्पत्ति का स्वामी ब्राह्मण पण्डित होगा, वह स्वयं ही आमफलों से भरी नाव से नदी पार करके आमफल राजधानी में राजा को भेंट करेगा एवं राजगृह में कुछ दिन रहकर शास्त्र विवेचन से राजा को आनंदित करेगा। कन्दर्पनारायण की स्वाभाविक रूप से शास्त्रों में रुचि थी और विद्वानों का साहचर्य उन्हें रुचिकर था। पण्डितों के साथ शास्त्रालोचन से वह परमसुख प्राप्त करते थे इसी अभिप्राय से उन्होंने उपर्युक्त नियम बनाया।

प्रतिवर्ष प्रमोदनपुरन्दराचार्य ने नियमों की परिपालना करते हुए आमफल से पूर्ण नौका से नदी पार करके राजधानी में आकर शुल्क रूप में उन फलों को राजा को समर्पित करके उनके साथ शास्त्र विनोद करते हुए समय व्यतीत किया। कुछ वर्ष इसी तरह बीत जाने पर आयु बढ़ने पर असामर्थ्यवश एवं अध्यापन-कार्य को देखते हुए अपने पुत्र मधुसूदन के साथ राजा का परिचय कराने के निमित्त तथा अपने पुत्र की काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होकर पारितोषिक के रूप में उनके निवास पर उनके पुत्र फलादि प्रदान करने का कार्य दे दिया जाएगा यह सोचकर अपने पुत्र मधुसूदन के साथ आम नाव में रखकर राजा के पास पहुँचे।

राजा भी मिलकर आनंदित हुआ। तदनन्तर कुशल वार्तालाप के अनन्तर प्रीतियुक्त पुरन्दराचार्य ने राजा से अपने पुत्र के असाधारण कवित्व शक्ति की चर्चा की और उनसे उनकी कविता सुनने की प्रार्थना की। परन्तु राजा मधुसूदन की कविता सुनने में उत्सुक नहीं थे। पुरन्दर ने बहुत याचना और अनुरोध किया। वर्ष भर के पश्चात् एक बार आपके दर्शन होते हैं वहाँ भी यदि आप आने में उदासीनता दिखाएँगे तो ऐसा नहीं चलेगा। आपके पुत्र द्वारा फल-दान का कार्य नहीं चलेगा। आपका यहाँ न आना मुझे अच्छा नहीं लगेगा। प्रतिवर्ष आपको ही आना चाहिए।

यह सुनकर राजा से पुरन्दर ने पुनः कहा—आप मेरे पुत्र की कविता सुनिये।

श्रवण से आपको आनन्द प्राप्त होगा। राजा ने कहा—बाद में सुनूँगा···तब पुरन्दर राजमहल में ही रहते हुए अपने पुत्र की कविता सुनाने के अवसर की प्रतीक्षा करते हुए बहुत दिन तक वहाँ रहे। समय-समय पर प्रार्थना करने पर सुनूँगा यह कहकर राजा कविता सुनने के प्रति उदासीन ही रहे।

इस घटना से पुरन्दराचार्य को दुःख हुआ और मधुसूदन को वैराग्य हो गया। वस्तुतः उसी समय कन्दर्पनारायण के राज्य पर मुग़ल रौज ने आक्रमण करके उसे अधीन बनाने का प्रयास किया। इसी कारण कन्दर्पनारायण काव्यादि शास्त्रालोचन में मन नहीं लगा पाते थे। राज्य-रक्षा-हेतु राजा चिन्तित रहते थे।

पुरन्दराचार्य और मधुसूदन ने स्थिति और होने पर भी राजा के बारे में और ही सोचा। पुरन्दराचार्य ने मधुसूदन के साथ घर लौटने का निश्चय किया। कन्दर्पनारायण की ओर से विफल मनोरथ वाले, उस घटना से आहत चित वाले पिता को देखकर सांसारिक असारता की भावना में वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर नाव में स्थित अपने पिता से मधुसूदन ने कहा—पिताजी मैं घर नहीं जाऊँगा। आप जाइये। मैं संन्यास ग्रहण करूँगा। आप मुझे आशीर्वाद प्रदान करते हुए संन्यास लेने की स्वीकृति प्रदान करके कृतार्थ करें। इसके पश्चात् मैं मनुष्य की उपासना नहीं करूँगा···जगत्पिता परमेश्वर की आराधना करूँगा···।

आपके प्रस्ताव पर कन्दर्पनारायण की ओर से उपेक्षा न केवल मेरा अपमान भी अपितु आपका भी अनादर था और अधिक क्या कहूँ। ब्राह्मण पंडितों की अवमानना विद्या का अपमान शास्त्रों का अनादर भी है। आप जैसों के ही मुख से सुना है भगवान् द्वारा भक्तों का योगक्षेम वहन किया जाता है। आप मुझे भगवदुपासना की अनुमति प्रदान करें।

पुत्र के इन वचनों को सुनकर पुरन्दर को पहले विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि कन्दर्पनारायण की उपेक्षा से पुत्र विषण्ण हो गया है। समय पर स्वाभाविक विद्याभ्यास से सब ठीक हो जाएगा अतः उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।

मधुसूदन ने पुनः कहा—पिताजी सच कहता हूँ—संन्यास ग्रहण करूँगा···। नवद्वीप में भगवदवतार श्री चैतन्य की शरण में जाऊँगा···।

यह सुनकर पुरन्दराचार्य ने कहा—यौवन काल में मुझे भी संन्यास की इच्छा हुई पर किसी कारणवश वह सिद्ध नहीं हुई। तुममें तो बाल्यावस्था में ही संन्यास की इच्छा हुई है। अतः इस शुभभावना को मैं रोकना नहीं चाहता। मैं तदर्थ तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो फिर घर में तुम्हारी माँ है उनकी भी स्वीकृति ली जानी चाहिए ···घर चलो माता से अनुमति ग्रहण करके संन्यास ग्रहण करना।

इस तरह समझा-बुझाकर पिता पुत्र को घर ले गये। पिता पुत्र ने घर जाकर परिजनों से सारा वृत्तांत निवेदित किया। मधुसूदन ने भक्ति पूर्वक माँ को प्रणाम करके कहा—माँ आपसे एक भिक्षा चाहता हूँ यदि आप दे सकती हैं तो कहूँ अन्यथा नहीं

कहूँगा। यह कहने पर माँ ने पुत्र से कहा— दूँगी, पुनः कहो तो सही। तब मधुसूदन बोले—माँ मैंने सुना है कि नवद्वीप में श्री चैतन्य भगवान् के अवतार के साथ में आविर्भूत हुए हैं। मैं उनकी शरण में जाकर संन्यास ग्रहण करूँगा और आप उसकी स्वीकृति प्रदान करके मेरे मनुष्य जन्म को सार्थक कीजिये।

यह वाक्य सुनकर सहसा वह हवा से प्रताड़ित कदलीवृक्ष के तने की भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयी। कुछ समय बाद उठकर रोती हुई आँसू पूरित नेत्र एवं गद्गद कण्ठ से पुत्र का आलिंगन करके बोली—"बेटा, ऐसा मत कहो तुम्हारा क्या होगा...इस अल्पायु में संन्यास? यह कहकर पुनः मुझे व्यथित नहीं करोगे..." इस प्रकार विलाप करती हुई मधुसूदन की माता को पुरन्दराचार्य ने ज्ञानमय वचनों से प्रबोधित किया।

"कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
विश्वम्भरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥"

इस अपार सुख से पूर्ण संसार में जिसका चित्त परब्रह्म में लीन हो गया उसका कुल पवित्र हो गया और उसकी जननी भी कृतार्थ हो गई तथा धरती भी पुण्यमयी हो गयी। यह वचन सुनाकर संन्यास के विषय में उनसे स्वीकृति दिलवायी और बताया कि मैंने तो उसे पूर्व में ही अनुमति दे दी है। अब फिर कह देता हूँ—

बेटा यदि संन्यास में रुचि है तो योग्यता अर्जित करो। नवद्वीप जाकर पहले शास्त्राध्ययन से ज्ञानार्जित करो तदनन्तर संन्यास ग्रहण करो। मूर्ख को संन्यास ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। शास्त्र के ज्ञान से युक्त विरक्त मनुष्य ही संन्यास के अधिकारी हैं। इसीलिए मैं एक बार फिर से कहता हूँ कि विद्वान् को विरक्त होकर ही संन्यास ग्रहण करना चाहिए।

मधुसूदन ने तथास्तु कहकर भक्तिपूर्वक माता-पिता और दोनों ज्येष्ठ भ्राताओं को प्रणाम किया। माता-पिता पुत्र और अग्रजों ने सिर पर हाथ रखकर उसे आगे बढ़ने का आशीर्वाद दिया।

3

नवद्वीप की ओर

शुभ दिन मधुसूदन सबकी अनुमति प्राप्त करके घर से अकेले ही निकल पड़े। फरीदपुर मण्डल के उत्तर भाग में गंगा की एक शाखा पद्मा नदी पूर्व दक्षिण से कुछ दूर बहती हुई ब्रह्मपुत्र में मिलकर यमुना कहलाती है। वही यमुना दक्षिण दिशा से कुछ दूर वहती हुई मेघना नदी के साथ मिलती हुई मेघना नाम धारण करती है। मेघना की दक्षिण दिशा में बहती हुई समुद्र में जाती है। फरीदपुर बाखरगंज पश्चिम दिशा में मधुमती नामक नदी है। पद्मानदी जहाँ ब्रह्मपुत्र से मिलती है वहाँ से पश्चिम दिशा में पद्मावती नदी से उत्पन्न मधुमती नदी दक्षिण दिशा में बहती हुई समुद्र में गिरती है। मधुमती के पश्चिम में यशोहर और खुलना में दो मण्डल कुछ दक्षिण दिशा की ओर हैं। यशोहर और खुलना इन दोनों मण्डलों के पश्चिम भाग में चौबीस परगना और मधुमती के कुछ पश्चिमोत्तर में कुछ दूरी पर नवद्वीप है। मधुसूदन की वही गन्तव्य स्थली है। घर से निकलकर मधुसूदन ने किसी मनुष्य से रास्ते के बारे में पूछा और घर से पश्चिम की ओर चल पड़े। तब मधुसूदन की आयु बारह वर्ष से भी कुछ कम थी। इस प्रकार कुछ दिन इधर-उधर घूमकर वे मधुमती के पूर्वीय किनारे पर पहुँचे। इसी रास्ते से वे मधुमती के ठीक किनारे पर पहुँच गये। वहाँ मधुमती को पार करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। कोई बस्ती भी वहाँ नहीं थी। मधुसूदन उसी रास्ते से चलते हुए सामने बहती हुई प्रबल धारा युक्त कछुए और मगरमच्छों से भरी हुई तेजी से बहती हुई उस दुस्तर मधुमती नदी में प्रवेश कर गये। इसके अतिरिक्त नदी पार करने का कोई उपाय नहीं था। नौका या नाविक भी वहाँ नहीं थे। जहाँ कहीं भी उनकी दृष्टि गयी वहाँ कोई झोंपड़ी या घर अथवा नदी को पार करने का कोई साधन दिखायी नहीं दिया। इस अवस्था में स्वयं को वे निरुपाय मानकर भगवती गंगा की शरण में चले गये। मधुमती नदी के पूर्व भाग के किसी किनारे पर एक जगह बैठकर उन्होंने एकाग्रसन जाह्नवी मन्त्र का जप किया। तब जाह्नवी देवी मधुसूदन की भक्ति से प्रसन्न होकर उनके सम्मुख प्रकट होकर बोली—बेटा, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। मुझसे वरदान माँगो। मधुसूदन बोले, हे माता! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे इस नदी को पार करने के उपाय के माध्यम से भवनदी को पार करने का उपाय बताएँ और यदि आप मुझ पर प्रसन्न

हैं तो दूसरा वरदान दीजिए कि मेरा कोई आत्मीयजन इस नदी में विपत्तिग्रस्त न हो। तदनन्तर जाह्नवी देवी तथास्तु कहकर अन्तर्धान हो गयी। जाह्नवी देवी की कृपा से उसी समय कोई मछुआरा मछलियाँ संचित करने के लिए छोटी नौका से मधुमती के दूसरे किनारे से इस किनारे पर आया जहाँ मधुसूदन चिन्तित अवस्था में बैठे हुए थे। मधुसूदन की उस अवस्था को देखकर वो बोला भगवन् क्या नदी पार जाना चाहते हो? आइये मैं इस तरणी से आपको नदी पार कराऊँगा। मधुसूदन बोले—मैं उस पार जाना चाहता हूँ परन्तु मेरे पास एक भी पैसा नहीं है··· मछुआरा बोला, पैसे से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। आपको मैं उसके बिना नदी पार कराऊँगा। यह कहकर उस मछुआरे ने उसी छोटी नौका से नदी पार करायी।

नदी पार करके उसने राहगीरों से नवद्वीप का पथ पूछा। राहगीरों ने दिव्य कान्तिमान् बालक को देखकर उसे रास्ता दिखाया। राह में जाते हुए मधुसूदन ब्राह्मणों का आतिथ्य स्वीकार करते हुए नवद्वीप पर पहुँचे। कष्ट से ही नवीन सफलता मिलती है, इस कवि-वाक्य का स्मरण करते हुए वे राह के सभी कष्ट भूल गये। राह में निर्मल जलाशयों का जल पीते हुए भीषण सूर्य की गर्मी को बादलों की छाया से सहते हुए गर्मी में मलय समीर से सेवा किये जाते हुए दिन के अन्त में अनुकूल आश्रम प्राप्त करते हुए भाग्यानुकूलता से पंचभूतों की अनुकूलता प्राप्त करते हुए दैव कृपा से वे नवद्वीप पर पहुँचे।

घर लौटाने के लिए अग्रज का प्रयत्न

बारह वर्षीय मधुसूदन ने पिता की अनुमति से घर छोड़ा। यह वृत्तान्त मधुसूदन के आत्मीयों को नहीं रुचा। उन्होंने मधुसूदन के संन्यास की अनुमति देने वाले माता-पिता की निन्दा की। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों मधुसूदन के अग्रज यादव की मधुसूदन की संन्यास विषयक पीड़ा असहनीय हो गयी। उस यादव ने मधुसूदन के साथ पिता से शात्राध्ययन किया था।

मधुसूदन के नवद्वीप चले जाने पर यादव की विरह व्यथा भी बढ़ गई···उसने नवद्वीप से मधुसूदन को लौटा लाने के लिए पिता से अनुमति प्राप्त करने हेतु प्रार्थना की। पिता पुरन्दराचार्य ने मन में सोचा—मधुसूदन जैसा संसार से विरक्त है क्या उसे यादव संसार में लौटा सकेगा? मुझे तो लगता है उसके साथ यादव ही गृहत्यागी नहीं हो जाए। यह सोचकर उन्होंने यादव को कोई उत्तर नहीं दिया1 तब यादव ने माता से अनुमति की, प्रार्थना की तब माँ ने सोचा—मधुसूदन सदा यादव के आदेश का पालन करता है यदि नवद्वीप जाकर यादव मधुसूदन को घर लौटा लाने के लिए प्रेरित करे तो भाई द्वारा प्रोत्साहित मधुसूदन कदाचित् घर लौट आएगा। यह सोचकर उन्होंने यादव को नवद्वीप जाने की अनुभूति दे दी। यादव प्रसन्न मन से घर से निकलकर लम्बा रास्ता पार करके नवद्वीप पहुँचा।

वहाँ पहुँचकर मधुसूदन को खोजते हुए मथुरानाथ तक वागीश के भवन में यादव ने उसे देखा। यादव को ज्ञात हुआ कि मधुसूदन तत्वतः संन्यासी नहीं प्रत्युत मथुरानाथ के घर में शास्त्र-चिन्ता में मग्न है। अग्रज आकर उसके पार्श्व में बैठा है इस ओर भी मधुसूदन का ध्यान नहीं था। जब यादव ने प्रीतिमय वचनों से मधुसूदन को सम्बोधित किया तो आश्चर्यान्वित होकर अपने पार्श्वस्थ भाई को देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने आसन से खड़े होकर उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। बहुत समय बाद छोटे भाई को देखकर गद्गद अश्रुनेत्रों से यादव ने उसका स्नेहालिंगन किया। मधुसूदन की आँखों में भी आँसू आ गये।

काफी देर बातचीत के बाद यादव ने मधुसूदन से घर लौटने का अनुरोध किया। मधुसूदन अग्रज भाई के वचनों का सम्मान रखने के लिए चुप रहे। यादव ने मौन को स्वीकृति मानकर उन्हें नवद्वीप से कोटालिपाड़ा जाने का आदेश दिया। मधुसूदन ने संकेत से अपनी असहमति और उनकी असम्मति जानकर निवेदन किया।

यादव ने हताश निरुपाय यादव के भोजन के पश्चात् शात्राध्ययन आदि के बारे में पूछा—उनके उत्तर से ज्ञात हुआ कि इतने समय तक मधुसूदन ने जब प्राचीन न्याय शास्त्रादि बहुत से शास्त्र पढ़ लिए हैं। उसके दर्शन से यादव को भी न्यायशास्त्र विषयक जिज्ञासा हुई। अतः उसने भी घर जाने की आकांक्षा छोड़कर मधुसूदन के साथ मथुरानाथ के पास न्याय शास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन करना शुरू किया।

4

वाराणसी प्रयाण

न्यायशास्त्र का अध्ययन समाप्त करके मधुसूदन ने न्यायशास्त्र की तर्क पद्धति के अनुसार अद्वैत निराकरण पूर्वक द्वैत मत की स्थापना के लिए यह बृहद् ग्रन्थ रचने का विचार किया। यह सोचकर विचार बनाया कि अद्वैतमत का निराकरण किये जाने पर उस मत से पहले जान लेना चाहिए कि दूसरा पक्ष क्या है अन्यथा सम्यक् रीत्या निराकरण नहीं हो पाएगा। इस समय नवद्वीप में अद्वैत-वेदान्त-विषयक कोई पंडित नहीं है। मुझे क्या करना चाहिए। सोचकर जिनकी कोई गति नहीं है उनकी वाराणसी में गति है इस सूक्ति का स्मरण करते हुए अद्वैत वेदान्त के अध्ययन हेतु वाराणसी जाने का दृढ़ संकल्प किया। वह निश्चय गुरु मथुरानाथ के सम्मुख व्यक्त भी किया। यह सुनकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वचनों से वाराणसी जाने के निश्चय का अनुमोदन किया। मधुसूदन के अग्रज का न्यायशास्त्र का अध्ययन समाप्त नहीं हुआ था। उन्होंने उनसे कहा—हे अग्रज! नमस्कार; आप यहाँ न्यायशास्त्राध्ययन कीजिए। तदनन्तर घर जाइएगा, मैं तो अब वेदान्त का अध्ययन करने के लिए वाराणसी जा रहा हूँ। आप यहीं रहकर न्यायशास्त्र का अध्ययन करें। यह कहकर गुरु मथुरानाथ को अभिवादन करके मधुसूदन वाराणसी की ओर चल दिए।

वे नदी-पर्वत, जंगली जानवरों से व्याप्त जंगल को पैदल पार करके वाराणसी पहुँचे। दूर से ही अभ्रंलिह मन्दिर के शिखर से चमकती ध्वज पताका से सुशोभित, धवल बादलों से आवेष्टित महलों की पंक्ति को तथा गंगा के वक्ष से उठी हुई असंख्य प्रशस्त ऊँची-ऊँची पत्थर की सीढ़ियों से विभूषित द्वितीया के अर्द्धचन्द्र की आकृति वाले तथा भूमण्डल में उक्त परिधि वाली वाराणसी को देखकर विश्वनाथ की अपार महिमा को जानकर मन से भक्ति-विह्वल तथा रोमांचित होकर मानो मधुसूदन ध्यान-मग्न हो गये।

तब मधुसूदन नाव में बैठकर गंगा पार करके उसके पश्चिम की ओर स्थित वाराणसी में आए। वहाँ आकर देखा कि कहीं बच्चे, बूढ़े और महिलाएँ भक्ति-पूर्वक, गंगा में स्नान कर रहे हैं। कुछ तट पर पुण्यार्थी दानव्रत पूजादि कर रहे हैं और कहीं कुछ व्यक्ति मधुर कण्ठ से देवी-देवताओं के स्तोत्र गा रहे हैं। भक्ति-पूर्वक भागीरथी

में नहाते हुए कुछ बाल वृद्ध और वनिताओं के समूह को देखा। पूरी वाराणसी में उन्होंने गंगा की सोपानावलि पर असंख्य देवी-देवताओं के मन्दिर देखे। कुछ साधु योगासन में बैठे हुए ध्यान-मग्न थे। अन्य पितृव्रती पुण्यादि, श्रद्धादि कामों में लगे हुए थे। कुछ दण्डधारी संन्यासी विश्वनाथ की पूजा के लिए जा रहे थे। वाराणसी की अपूर्व महिमा देखकर मधुसूदन आनन्द से आह्लादित हो गये। उन्होंने संन्यासियों के मुँह से सुना—मुग़लों के शासनकाल में पठानों और मुग़लों ने हिन्दू संन्यासियों पर घातक प्रहार किये। अपराध करने पर भी महम्मदीय साधुओं के अपराध पर राज धर्माधिकारियों ने कोई विचार नहीं किया, न ही कोई दण्ड दिया। कदाचित् हिन्दू संन्यासियों के रक्त से भागीरथी का जल लाल हो गया, यह सुनकर मधुसूदन भयविह्वल हो गये। वह भक्तिपूर्वक विश्वनाथ को प्रणाम करके उनके शरणागत होकर चिन्ता मुक्त हुए।

वाराणसी में वेदान्त का अध्ययन—वाराणसी में पहुँचकर मधुसूदन यह सोचने लगे कि मैं कहाँ किससे वेदान्त का अध्ययन करूँगा? तब वाराणसी में ज्ञानार्णव की राह पाने वाले विद्वान् देवतुल्य गुरु निवास करते थे। सर्वपूज्य रामतीर्थ उपेन्द्र अप्पयदीक्षितर जगन्नाथश्रम कृष्णतीर्थ विश्वेश्वर सरस्वती इत्यादि देवतुल्यगुरुजन विश्वनाथ की अपार महिमा गायन करते थे। मधुसूदन किसी भी काशीवासी जन से पूछते तो वे वहाँ के विद्वानों के नाम लेते। मधुसूदन सोचने लगे किसका शिष्य बनूँ? किससे वेदान्त सुनूँ? यही सोचते हुए उन्होंने प्रायः क्रमानुसार सभी पण्डितों से साक्षात्कार करके वार्तालाप किया। तब सोचा कि रामतीर्थ मेरे लिए वेदांताध्ययन के लिए उपयुक्त गुरु होंगे। तव रामतीर्थ वेदान्त के अद्भुत विद्वान् थे। वेदान्त के सिद्धान्तों को जानकर चैतन्य महाप्रभु का स्मरण करके भेदाभेद मति से किसी प्रतिष्ठित ग्रन्थ की रचना करूँगा यह संकल्प करके मधुसूदन रामतीर्थ से वेदान्त पढ़ने लगे परन्तु मधुसूदन ने अपना मनोगत अभिप्राय रामतीर्थ को नहीं बताया। उन्होंने यह सोचकर कि कहीं रामतीर्थ मेरे अभिप्राय को जानकर मुझे वेदान्त नहीं पढ़ायेंगे उन्होंने अपना अभिप्राय उनसे छिपा दिया। उन्होंने सुना था कि आचार्य कुमारिल भट्ट ने गुरु से बौद्धमत का खण्डन करके भी कामना से एक बौद्ध गुरु से बौद्धमत का अध्ययन किया तथा बाद में इस पाप की निवृत्ति के लिए अपने शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया इसी प्रकार मधुसूदन भी अद्वैत वेदान्त मत के निराकरण के लिए राममिश्र से वेदांत को पढ़ने लगे। अपने मन में ऐसा सोचकर उन्होंने आचार्य राममिश्र को कहा—भगवान् मैं आपसे अद्वैत वेदान्त का अध्ययन करूँगा। आप अद्वैत वेदान्त पढ़ाकर मुझे कृतार्थ करें। राममिश्र ने सभ्य विनीत मधुसूदन की कवित्व शक्ति न्यायधारण की प्रवीणता तथ मेधा को देखकर कहा—अच्छा मैं तुम्हें वेदान्त पढ़ाऊँगा। मेरे पास रहकर वेदान्त शास्त्र पढ़ो।

तब मधुसूदन सदाचारित होकर परमश्रद्धापूर्वक राममिश्र से वेदान्त शास्त्र पढ़ने लगे। उन्होंने भी जल बिन्दु के लिए प्यासे चातक की तरह···भिक्षायाम के भोजन मात्र से संतुष्ट नियमपूर्वक वेदान्त चिन्तन में मन लगाया। दिन-रात वेदान्त चिन्तन में रत

होकर छात्रों के पाठाभ्यास से भी आधे समय में उन्होंने पाठों का अभ्यास कर लिया। इस प्रकार उन्होंने क्रमशः उपनिषद्, शरीरक सूत्र, भगवद्गीता आदि ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन किया। उनके विद्याग्रन्थ को देखकर सभी विस्मित थे। रामतीर्थ योग्य शिष्य को पाकर बहुत प्रसन्न हुए थे।

वाराणसी : वेदोन्नति का प्रतिष्ठान—उस समय वाराणसी में प्रायः पण्डितों में शास्त्र विचार हुआ करता था। कोई भी दूसरे के मत का निराकरण करके अपना मत स्थापित करने में समर्थ नहीं हुआ। अद्वैतवादी द्वैतमत का निराकरण करके अद्वैतमत को स्थापित नहीं कर सके। तार्किक भी अपने से भिन्न मत का निराकरण करके स्वमत की प्रतिष्ठापना न कर सके। मीमांसक अन्य मतों का निराकरण करके अपने मत की स्थापना नहीं कर पाए। काशीक्षेत्र में शास्त्रार्थ शुद्धाद्वैतमत प्रर्वतक श्री वल्लभाचार्य कुछ समय पूर्व उपेन्द्र सरस्वती आदि विद्वानों से पराजित होकर काशी में अपने मत की स्थापना में असमर्थ होकर अन्यत्र चले गये। चैतन्य भी अद्वैतवादियों के सम्मुख अपने मत की स्थापना में असमर्थ होते हुए वाराणसी से बाहर जाकर वापस नहीं आए।

इसी समय एक बार मीमांसाशास्त्र निष्णात शिवविशिष्टाद्वैतवादी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अप्पय दीक्षित वाराणसी में शैव मत का प्रचार करते हुए भेदधिक्कार ग्रन्थ के रचयिता नृसिंहाश्रम से वेदान्त विचार में पराजित हुए और अद्वैत वेदान्त मत स्वीकार कर लिया। हमारा मानना है कि इसी कारण अन्य मीमांसक फिर भी अद्वैतमत के निराकरण में इसके बाद भी कुछ समय प्रयत्नशील रहे एक बार उन्हें वह अवसर भी मिल गया।

मीमांसा का अध्ययन

मीमांसा धुरीण दक्षिणात्य *वृत्तरत्नाकर* टीका के रचयिता विश्‍वनाथ मन्दिर के निर्माता नारायण भट्ट ने नृसिंहाश्रम उपेन्द्र सरस्वती को शास्त्रार्थ के उद्देश्य से आमन्त्रित किया। इस शास्त्रार्थ विचार में मधुसूदन ने नृसिंहाश्रम के पक्ष में आसन ग्रहण किया। परन्तु इस विमर्श के अन्त में नारायण भट्ट ने नृसिंहाश्रम व उपेन्द्र सरस्वती को पराजित कर दिया। उनके दर्शन से मधुसूदन की मीमांसाशास्त्र के विषय में जिज्ञासा हुई। उन्होंने नारायण भट्ट के समीप जाकर मीमांसाशास्त्र के अध्ययन की जिज्ञासा व्यक्त की। नारायण भट्ट ने उनके इस प्रयास की प्रशंसा की तथा उन्हें माधव सरस्वती के पास जाने को कहा। वह मेरा सहपाठी है मेरे पिता का शिष्य है तथा न्यायशास्त्र में पारंगत है। न्यायशास्त्र में प्रवीण तुम्हें मेरी अपेक्षा मीमांसाशास्त्र में भी अतिविद्वान् न्यायशास्त्र के ज्ञाता माधव सरस्वती पण्डित से मीमांसाशास्त्र पढ़ने की सुविधा प्रदान करेंगे।

नारायण भट्ट के इन वचनों को सुनकर मधुसूदन उचित और युक्तियुक्त जानकर माधव सरस्वती से पूर्वमीमांसाशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। इस प्रकार

वे मीमांसाशास्त्र में भी निपुण हो गये। मीमांसाशास्त्र में निपुणता से उन्हें गीता टीका एवं अन्य शास्त्रों के निर्माण में बहुत मदद मिली।

गुरु से विद्याग्रहण करने मात्र से मधुसूदन को सन्तुष्टि नहीं हुई। परन्तु न्यायशास्त्र से परिमार्जित बुद्धि से श्रवित विषय के मनन तथा तदुपरान्त निदिध्यासन में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार विद्या प्राप्त करने के समय श्रवण, मन, निदिध्यासन करने से मधुसूदन ने मीमांसाशास्त्र में पाण्डित्य प्राप्त किया। ऐसा सुना जाता है कि इसी से बाद में वह ब्रह्म साक्षात्कार में भी समर्थ हुए।

इस प्रकार माधव सरस्वती से मीमांसा अध्ययन एवं रामिश्र से वेदान्त अध्ययन से मधुसूदन ने वेदान्त के रहस्य को भली-भाँति जान लिया। अद्वैतवाद का तात्पर्य जानने पर उनका विचार बना कि अद्वैतमत ही यथार्थ, सत्य और उपयुक्त है। इससे अतिरिक्त अन्य द्वैतवाद आदि अन्य मत मिथ्या हैं। द्वैतादि अन्य मत अद्वैत तत्त्व को जानने के स्वरूप हैं। तत्त्वद्रष्टाओं ने कहा है--जीव और आत्मा में किसी भी प्रकार का भेद न मानना प्रशंसनीय है तथा उनको पृथक्-पृथक् मानना निन्दनीय है यह सिद्धान्त ही युक्तियुक्त है।

जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेन प्रशस्यते।
नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवं हि समञ्जसम् ॥
मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्याचादिताऽन्यथा।
उपायः सोऽवताराय नास्ति भेदः कथञ्चन ॥
स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढ़म्।
परस्परं विरुध्यन्ते तैरयं न विरुध्यते ॥

(*गौडपाद-का*-3/13-15-17) इति।

मिट्टी लौह स्फुलिंग आदि से सृष्टि का प्रवर्तन हुआ सृष्टि के अवतरण का और कोई उपाय नहीं है।

द्वैतवादी अपने सिद्धान्त की व्याख्याओं में पूर्णता निश्चित है। आपस में एक-दूसरे का विरोध करते हैं, परन्तु वे अभेद का विरोध नहीं करते।

तदनन्तर उन्होंने *बृहदारण्यक* भाष्य वार्तिक, *तैत्तिरियोपनिषद्भाष्य* वार्तिक, *नैकर्म्यसिद्धि, पंच पादिका विवरण, पंचदशी, जीवनमुक्तविवेक, न्यायमकरन्द प्रत्यकृतत्त्वप्रदीपिका, खण्डनखण्डखाद्य, इष्टसिद्धि ब्रह्मणी* आदि वेदान्त ग्रन्थ पढ़े।

संन्यास ग्रहण का प्रभाव

इस प्रकार मीमांसा शास्त्र वेदान्तशास्त्र आदि सभी शास्त्रों को पढ़ने पर साक्षी का तात्पर्य अद्वैत में यह जानकर मधुसूदन को पश्चात्ताप हुआ। मैंने गुरु के प्रति यह कैसा

कपट आचरण किया है। गुरु के पास अद्वैतमत के खण्डन के अभिप्राय से उनके पास वेदान्त का अध्ययन करने गया था। अहो यह कैसा पाप हो गया इस प्रकार मन में असंतुष्ट होकर एक बार मधुसूदन ने गुरु रामतीर्थ से निवेदन किया—गुरुदेव, मैंने आपके प्रति अपराध किया है। मुझे उसका उपयुक्त प्रायश्चित बताइए। गुरु ने कहा—तुमने कोई अपराध नहीं किया है। रामतीर्थ के ऐसा कहने पर मधुसूदन ने कहा—भगवान् चैतन्य महाप्रभु के अद्वैतमत की स्थापना करने के लिए मैंने अद्वैत वेदान्त पढ़ा। अद्वैतमत का निराकरण करके द्वैतमत का प्रतिष्ठापक एक ग्रन्थ रचूँगा। इस बुद्धि से आपके पास आया था पर यह अभिप्राय आपको न बताकर मैंने धृष्टता की। यदि मैंने आपको वह नहीं कहा होता तो आप कहीं मुझे नहीं पढ़ायेंगे इसी शक से मैंने आपसे झूठ बोला। मेरी मति विपरीत हो गयी है। श्रुति इतिहास वेद पुराण आदि सभी का तात्पर्य अद्वैत वेदान्त मत ही है। अन्य मत आसान हैं वे अद्वैतत्व में प्रवेश के लिए सोपान है। गुरु के प्रति मैंने बहाने अपराध किया है। इसका प्रायश्चित्त करूँगा।

यह सुनकर हर्ष विस्मयाविष्ट रामतीर्थ ने कहा—तुमने अनजाने में कपटता की। भ्रान्त होकर तुमने द्वैतमत अभ्रान्त है ऐसा सोचकर ऐसा किया। तुम्हारा अपराध बड़ा नहीं है। वेदान्त के अध्ययन के बाद तुम्हारी यह क्रान्ति भी दूर हो गयी फिर भी अज्ञान के कारण हुए अपराध के शमन के लिए संन्यास ग्रहण कर ले। संन्यास-ग्रहण से अपराध का क्षालन होगा। तुम्हारे अपराध-हनन का यही विधान है। और भी माधव सम्प्रदाय के कयास नामक आचार्य पण्डितों ने युक्ति से अद्वैतमत का निराकरण करके न्यायामृत नामक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ का प्रचार होने पर अद्वैतमत लगभग लुप्त हो सकता है। अभी तक वाराणसी में कोई भी उस ग्रन्थ के सिद्धान्तों का खण्डन नहीं कर सका। तुम भी न्यायशास्त्र में दक्ष मीमांसा वेदान्तशास्त्र में कुशल हो। यहाँ तुम्हारे समान कोई भी विद्वान् नहीं है। उसका निराकरण करने में तुम्हीं समर्थ हो ऐसा मैं मानता हूँ। अतएव यह मेरा द्वितीय आदेश है कि न्यायामृतग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति का निराकरण करके अद्वैतसिद्धान्त प्रतिपादन करो। यह सुनकर मधुसूदन ने कहा—तो आप मुझे संन्यास दीजिए। मैं भी संसार से उकता चुका हूँ। तब रामतीर्थ ने कहा—"वत्स, ऐसा नहीं है। संन्यासियों में भी यह नियम है कि संन्यासार्थियों के महामण्डलेश्वर संन्यास देते हैं।"

इस समय विश्वेश्वर सरस्वती महामण्डलेश्वर हैं और वे वेदान्तशास्त्र निष्णात हैं। अतः तुम पूज्य विश्वेश्वर सरस्वती से संन्यास ग्रहण करो।

रामतीर्थ से यह सुनकर मधुसूदन ने विश्वेश्वर सरस्वती के पास जाकर संन्यास ग्रहण करने का अभिप्राय निवेदित किया।

यह सुनकर विश्वेश्वर सरस्वती ने मधुसूदन को साधुवाद देकर कहा—तुमने शास्त्रों से बहुत ज्ञान प्राप्त किया है और वैराग्य-समन्वित भी हो। अतः संन्यास के

योग्य अधिकारी हो। परन्तु इस सम्बन्ध में शिष्य का परीक्षण गुरु का कर्त्तव्य है। तुम्हारी परीक्षा के लिए कह रहा हूँ अब मैं तीर्थयात्रा करूँगा। वर्ष के अन्त में आऊँगा। इतने समय तक तुम श्रीमद्‌भगवद्‌गीता की एक टीका रचो। आकर मैं इस टीका को देखूँगा।

"जो आपका आदेश है वही होगा" यह कहकर मधुसूदन ने पूज्य विश्वेश्वर सरस्वती के तीर्थाटन पर चले जाने पर गीता टीका की रचना शुरू कर दी। प्रायः वर्ष के मध्य तक उन्होंने कुछ अधूरी-सी टीका रची। वर्ष के अन्त में तीर्थाटन से लौटने पर पूज्य विश्वेश्वर सरस्वती को प्रणाम करके वह टीका उन्हें समर्पित की। इस टीका का गूढ़ार्थ दीपिका नाम दिया। मधुसूदन कृत गूढ़ार्थदीपिका नामक गीता की टीका को ज्यों-ज्यों पूज्य विश्वेश्वर सरस्वती पढ़ते जाते थे त्यों-त्यों विस्मय और हर्ष से उत्फुल्ल होते हुए कौतूहल से भरते जाते थे। उस टीका में प्रत्येक पंक्ति में शब्द-विन्यास, विस्तार ज्ञान भक्ति का सामंजस्य तत्त्वज्ञान का उत्कर्ष साधन रहस्यादि गहन तत्त्वों का समावेश था। उस टीका में सर्वत्र जगद्‌गुरु शंकराचार्य के समय के भावों की छाया थी।

विश्वेश्वर ने प्रायः आहार निद्रा छोड़कर गीता टीका पढ़ी। मधुसूदन उस टीका को पूर्ण नहीं कर सके। पूज्य विश्वेश्वर सरस्वती ने अधूरी टीका का अध्ययन करके कहा—"मधुसूदन! मेरे द्वारा तुम्हारी परीक्षा पूरी हुई। किसी भी शुभ दिन तुम संन्यास ग्रहण कर सकते हो। मैं तुम्हें संन्यास की दीक्षा दूँगा। दण्ड ग्रहण मात्र से ही नर नारायण हो जाता है।" इस शास्त्र प्रमाण से मधुसूदन नारायण हो गये। मधुसूदन का कुल पवित्र हो गया।

वास्तव में जब मनुष्य मोक्ष-प्राप्ति के लिए संन्यास के पथ पर प्रवृत्त होता है तो उसका कुल पवित्र हो जाता है उसकी माता कृतार्थ हो जाती है तथा उसकी मातृभूमि पुण्यमयी हो जाती है। यह उक्ति चरितार्थ हो गयी।

यादव का काशीगमन और मधुसूदन से वार्तालाप

न्यायशास्त्र का अध्ययन समाप्त करके जब मधुसूदन वाराणसी आए तो उन्होंने अग्रज से कहा—हे अग्रज! आप न्यायशास्त्र का अध्ययन करो मैं अब वेदान्त का अध्ययन करने वाराणसी जाऊँगा। वेदान्त का अध्ययन समाप्त करके शीघ्र ही लौटूँगा। तब यादव बहुत दिनों तक नवद्वीप में न्यायशास्त्र पढ़कर भाई के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। जब बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी मधुसूदन नहीं लौटे तो यादव चिन्तातुर होकर कहीं मधुसूदन ने हम से ममत्व तो नहीं तोड़ लिया। इसकी चिन्ता करने लगे। कितने विद्यार्थी वाराणसी से आते-जाते हैं। किसी से भी मधुसूदन की चर्चा नहीं सुनी। कहीं वह संन्यासी तो नहीं बन गया, जीवित भी है या नहीं इस प्रकार बहुत चिन्तातुर हो गये। तब यादव ने नवद्वीप से काशी जाने का निश्चय किया। इस समय में उनका न्यायशास्त्र का अध्ययन समाप्त हुआ था अतः मथुरानाथ की अनुमति से वह काशी

क्षेत्र में पहुँचे। काशी में आकर मधुसूदन को खोजते हुए उसने सुना मधूसूदन ने संन्यास ग्रहण कर लिया है और वह रामतीर्थ के पास रहता है। यह सुनकर यादव ने मधुसूदन के पास आकर मुण्डित सिर वाले काषाय वस्त्रधारी ब्रह्म चिन्तन निरत अपूर्व तेजस्वी देदीप्यमान मधुसूदन को देखा उसके अंगों से पवित्रता प्रसन्नता त्यागशीलता प्रस्फुटित होती थी। अब मधुसूदन अग्रज को देखकर पूर्ववत् अपने आसन से नहीं उठे अपितु जैसे संन्यासी गृहस्थ की अभ्यर्थना करते हैं तद्वत् उन्होंने भ्राता की अभ्यर्थना की। उन्होंने अग्रज को प्रणाम नहीं किया। परन्तु आसन देकर उन्हें बैठने का संकेत किया। यादव कनिष्ठ भ्राता में यह भाव परिवर्तन देखकर आश्चर्य से अवाक् रह गये। अगले क्षण इन विचारों को समेटकर आसन ग्रहण करके धीरकण्ठ से मधुसूदन से कुशलक्षेम पूछी। संन्यासी को पूर्व आश्रम की बातों का स्मरण नहीं करना चाहिए पर सोचकर मधुसूदन ने संक्षेप में अग्रज के प्रश्न का उत्तर देकर शास्त्रीय प्रसंगों पर बात की।

यादव ने सोचा यद्यपि मैं अब मधुसूदन के गृहस्थाश्रम में नहीं लौट सकता तथापि अनेक प्रकार से उसे उन्होंने उस ओर प्रवृत्त करने का प्रयास किया किन्तु मधुसूदन को अपने इस आग्रह में निर्णित ही देखा। यादव की मनोगति भी उसकी संगत के परिवर्तित हो गई। यादव ने भी संन्यासी होने का प्रयास किया। वह जितना संन्यास-हेतु प्रवृत्त होता उतने ही अधिकाधिक विघ्न उपस्थित होते। आपके भाग्य को संन्यास से बचाइए। आप घर आकर छात्रों को पढ़ायें। तब कुछ दिन वाराणसी में रहकर दुःखी यादव ने घर की ओर प्रस्थान किया। तब उसके माता-पिता भी दिवंगत हो गये थे। यादव भी गृहस्थाश्रम में प्रवृत्त होकर शास्त्र-प्रचार में लग गये।

5

गुरुकृपा एवं योगसिद्धि

वाराणसी में मधुसूदन के विद्यागुरु रामतीर्थ तथा संन्यास गुरु विश्वेश्वर सरस्वती ने उसके वैराग्य की शक्ति, ज्ञानवता, प्रतिभा और इसी तरह के नानागुणों से अनुरक्त होकर आशीर्वाद प्रदान करके उस पर कृपा की। मधुसूदन के प्रति उनकी अधिक स्नेह शीलता देखकर अन्य शिष्य उनसे जलने लगे तथा क्षुब्ध हुए। उनके पढ़ते हुए अनेक और शिष्यों को देखकर रामतीर्थ ने उनकी परवाह नहीं की। विश्वेश्वर उन शिष्यों को समझाने का उपाय सोचने लगे। उन्होंने अन्य शिष्यों से कहा मैं अब तीर्थ-पर्यटन करूँगा। मेरे साथ तुम सब बाहर आओगे विश्वेश्वर के यह कहने पर मधुसूदन सहित सभी शिष्य गुरु के साथ तीर्थाटन के लिए बाहर चले गये। रास्ते में मधुसूदन ने गुरु के साथ शास्त्रालोचन करते हुए तत्त्वज्ञान साधन आदि के बारे में पूछा। शिष्यों के साथ कुछ दूर जाने पर विश्वेश्वर सरस्वतीपाद ने यमुनातीर देखकर मधुसूदन को सम्बोधित करके कहा—अहो रेतमय यमुना का तीर देखो। अहो साधना हेतु कितना पवित्र और निर्जन स्थान है। तुम्हें यहीं रुककर योगाभ्यास में मन लगाना चाहिए। हम तीर्थाटन से जाते हुए जब लौटेंगे तब तुम्हें भी अपने साथ लेकर वाराणसी जाएँगे। इस समय अधिक पथ-पर्यटन उचित नहीं है यह कहे जाने पर मधुसूदन प्रीतिपूर्वक गुरुभक्ति को प्रणाम करके वहीं योगाभ्यास करने लगे। शिष्य सहित गुरु विश्वेश्वर दूसरे तीर्थ में घूमने लगे। वहीं यमुनातीर पर वास करते हुए मधुसूदन ने अपने को समाधि में लगाया। यद्यपि उस स्थान से गाँव दूर थे तथापि मधुसूदन की योगियों के साथ योगाभ्यास वार्ता सुनते हुए ग्रामवासियों ने स्वयं ही उनकी शिक्षा व्यवस्था कर दी। वे योगाभ्यास में ऐसे लीन हो गये कि उनके योग स्थान के चारों ओर अवस्थित बालुकाराशि ने उन्हें आवृत्त-सा कर दिया था।

तदनन्तर कुछ समय पश्चात् भारत सम्राट् अकबर की प्रिय साम्राज्ञी दुःसहाय भूल रोग से पीडित हुई। सम्राट् ने आयुर्वेदिक चिकित्सा एवं अन्य चिकित्साविधियों और इलाज से ठीक करने की कोशिश की। परन्तु ठीक नहीं कर सके। साम्राज्ञी भी रोग वेदना से हर क्षण बेहोश होती हुई अन्तिम साँसें गिनने लगी। तब जीने की आशा छोड़कर उसने भगवत् शरण का सहारा लिया। एक दिन शय्या पर सोते हुए उसने

रात्रि में यह स्वप्न देखा कि यमुना के तट पर स्थित कोई साधु सम्मुख प्रकट होकर कह रहा है—माता! यह औषध ग्रहण कीजिए। इसके सेवन से आपकी रोग/व्यथा दूर होगी।

प्रातः उठकर महिषी ने राज्य को स्वप्न वृत्तांत कहा। राजा ने लोगों को यमुना तीर पर साधु को खोजने में लगा दिया। कुछ लोगों ने इधर-उधर ढूँढ़कर यमुना के तीर पर बालू से ढकी देह वाले एक महात्मा को देखा। उन्होंने महाराज से यह वृत्तांत निवेदित किया। यह सब जानकर साधु संन्यासी श्रद्धालु तट पर योगासन में बैठे महात्मा के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने योग-प्रदीप्त शरीर वाले संयम चित्त वाले तरुण योगी को समाधि की अवस्था में देखा। उसके पास बहुत मनुष्य दर्शनार्थ आये। सम्राट् व महिषी ने उसको विशेष रूप से देखकर वही स्वप्न में देखा गया साधु है यह निश्चय किया। छद्मवेश में सम्राट् और उनकी महिषी साधु के समाधि से उठने की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ दिनों बाद साधु समाधि से उठे तब महिषी ने उनके पास आकर उपने शूल रोग तथा स्वप्न में देखे गये प्रतीकारोपाय और औषधि आदि के बारे में बताया। मधुसूदन ने धीर कण्ठ से धीरे-धीरे कहा, माता घर जाइये। भगवान् आपको रोगमुक्त करें। यह आश्चर्य की बात थी कि साधु के आशीर्वाद देते ही उसी क्षण से साम्राज्ञी अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगी और उनकी सारी रोग व्यथा दूर हो गयी। उन्होंने राजा से निवेदन किया राजन्! मुझे अब किसी प्रकार की रोग व्यथा नहीं है, मैं सर्वथा स्वस्थ हूँ। यह कहकर उन्होंने सम्राट् से महात्मा की सेवा करने की प्रार्थना की। सम्राट् ने साधु की अलौकिक शक्ति जानकर मधुसूदन को बहुत से बहुमूल्य रत्न स्वर्णमुद्रा अर्पित की। उन्होंने मुस्कुराहट के साथ कहा—मुझे इनसे कोई प्रयोजन नहीं। संन्यासियों के लिए ये सब व्यर्थ है। भिक्षादान से सन्तुष्ट संन्यासी आत्मा में रमण करते हैं।

सम्राट् मधुसूदन के वचनों को सम्यक्तया न समझकर उन्होंने अपना परिचय देते हुए मधुसूदन से कहा—मैं भारत का सम्राट् अकबर हूँ और यह मेरी महिषी है सम्राट् के परिचय देने पर भयभीत होकर सभी लोग चुपचाप बैठ गए। मधुसूदन ने फिर कहा—महाराज! आप प्रजापालक एवं धर्मरक्षक हैं। संन्यासियों का भोग, त्याग, रूप, धर्म है, मैं उसी धर्म का पालन करूँगा। आप रत्न इत्यादि देकर मेरा धर्म भ्रष्ट न करें।

यह सुनकर सम्राट् व महिषी ने मधुसूदन को अतिशय भक्तिपूर्वक प्रणाम करके कहा—"तथास्तु महात्मन् तथापि जब कभी आपको कार्य प्रयोजन हो तब कृपा करके हमें अवश्य बताइएगा, यही प्रार्थना है। मैं भी आपके उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास करूँगा", यह कहकर राजा महिषी के साथ राजधानी को चले गये। रत्नमुद्रादि वैसे ही भूमि पर पड़े रहे, मधुसूदन ने उन्हें स्पर्श भी नहीं किया।

इसी अवसर पर पूज्य सरस्वतीपाद ने अन्य शिष्यों के साथ तीर्थाटन से लौटते हुए यमुना तट पर बैठे समाधि से उठे हुए उस अवस्था वाले मधुसूदन को देखा। उनके पास स्थित लोगों ने राजा के आगमन, साम्राज्ञी के शूल रोग से शमन, राजा द्वारा प्रदत्त

सामग्री की अवहेलना आदि से सम्बद्ध सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया। सरस्वतीजी के अन्य शिष्य यह सब जानकर मधुसूदन की अलौकिक शक्ति और गुणाधिक्य को देखकर ईर्ष्याभाव से मुक्त हो गये। मधुसूदन ने उपस्थित गुरु पूज्य विश्वेश्वर को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके साथ गये छात्रों से कुशलता पूछी। विश्वेश्वर बहुत प्रसन्न हुए। अन्य शिष्यों को मधुसूदन के साथ सौहार्द्र प्रबल बनाने का आदेश दिया। उस स्थान से विश्वेश्वर भी अन्य शिष्यों के साथ मधुसूदन को लेकर वाराणसी आए।

वाराणसी आकर मधुसूदन ने गीता टीका समाप्त करके उसे विश्वेश्वर गुरु के हाथ में समर्पित करके गुरु को लक्ष्य करके यह श्लोक लिखा—

"श्रीरामविश्वेश्वरमाधवानां प्रसादमासाद्य मया गुरुणाम्।
व्याख्यानवेतद् विहितं सुबोधं समर्पितं तच्चरणाम्बुजेषु ॥"

(गीता टीका का अन्तिम श्लोक)

मैंने श्री रामतीर्थ विश्वेश्वर सरस्वती तथा माधवसरस्वती इन गुरुओं की कृपा से यह सरल गूढ़ार्थ दीपिका नामक टीका को पूर्ण किया है। और मैं उन्हीं गुरुओं के चरणों में उसे समर्पित करता हूँ। (गीता टीका का अन्तिम श्लोक)

तब वाराणसी में रामतीर्थ के आदेश का स्मरण करते हुए व्यासतीर्थ न्यायामृत ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति का खण्डन करते हुए अद्वैतसिद्धि जैसे विशाल ग्रन्थ की रचना की। यद्यपि यह ग्रन्थ माध्वमत का निराकरण करता है तथापि यह परमत निराकरण की अपेक्षा अद्वैतसिद्धान्त प्रधान ग्रन्थ है। जैसे चित्सुखाचार्यकृत प्रयहत्वप्रदीपिका जल्प प्रधान ग्रन्थ है। श्रीहर्ष कृत *खण्डनखण्डखाद्य* वितण्डा प्रधान है तद्वत् *अद्वैतसिद्धि* न जल्प प्रधान है न वितण्डा प्रधान अपितु वाद प्रधान ही है। वहाँ उन्होंने कहा—

"श्रद्धाधनेन मुनिना मधुसूदनेन
संगृह्य शास्त्रनिचयं रचितातियत्नात्।
बोधाय वादिविजयाय च सत्वराणा-
मद्वैतसिद्धिरियमस्तु मुदे बुधानाम् ॥"

परम श्रद्धामय मुनि मधुसूदनजी ने बड़े प्रयत्नपूर्वक शास्त्रों का निचोड़ इस पुस्तक में संगृहीत किया है। जिससे जिज्ञासु लोगों को ज्ञान प्राप्त हो तथा जो वादी हैं उन पर विजय प्राप्त हो। ये ग्रन्थ विद्वानों की प्रसन्नता का साधन बने यही मेरी कामना है। जो शीघ्र अद्वैतज्ञान पाना चाहते हैं जो वादियों की पराजय चाहते हैं उनके अद्वैतज्ञान के लिए प्रतिपक्षी को जीतने के लिए *अद्वैतसिद्धि* नामक ग्रन्थ उपयुक्त रहेगा।

अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ में चार परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में सर्वकारणभूत जगत् का मिथ्यात्व बताया गया है। उससे सांसारिकता का मिथ्यात्व प्रतिपादित होता है।

सांसारिकता तो मिथ्यात्व के कारण हेय है। अखण्ड ज्ञान त्याज्यबन्ध से छुटकारा पाने का साधन है। द्वितीय परिच्छेद में बन्ध-निवर्तक ज्ञान के अखण्ड विषय का विवेचन किया गया है। तृतीय परिच्छेद में वैसे आत्मसाक्षात्कारात्मक ज्ञान के साधन को बताया गया है। मनन एवं निदिध्यासन प्रतिबन्ध से निवृत्ति-कारक होने से श्रवण के ही अनेक रूप में निरूपित किये गये हैं। चतुर्थ परिच्छेद में आत्मसाक्षात्कार का जो तत्त्वज्ञान है उनका जल अविद्या-निवृत्ति रूपी मुक्ति की प्राप्ति बताया गया है। वह मुक्ति दो प्रकार की है—1. जीवन्मुक्ति 2. कैवल्यमुक्ति।

संक्षेप में, अद्वैतसिद्धि और वेदान्त दर्शन से उठाकर मुक्ति में उसका पर्यवसान किया गया है। सृष्टि के आरम्भिक काल से ही अद्वैतवेदान्त के विरोध में जो-जो मत उपस्थित किये गये हैं प्रायः उन सभी का निराकरण करते हुए सुन्दर रूप से अद्वैतसिद्धान्तों की स्थापना की गयी है। अद्वैतवेदान्त जैसा ग्रन्थ दुर्लभ ही है। इस ग्रन्थ में खण्डन प्रसंगों के माध्यम से न्यायमत वैशेषिक मत मीमांसा मत माध्व मत बौद्ध मत आदि मतों का सम्यक् परिचय पाया जा सकता है। अतः इन वाक्यों में यही कहा जा सकता है कि अद्वैतवेदान्त सिद्धि ग्रन्थ सभी वेदान्त ग्रन्थों का सार है। इसके बाद वेदान्त पर कोई स्वतन्त्र मूल ग्रन्थ किसी ने भी नहीं रचा।

मधुसूदन ने अन्य भी कई ग्रन्थ रचे। उनका रचनाकाल और पौर्वापर्य ज्ञात नहीं होता है। किसी भी ग्रन्थ में मधुसूदन ने ग्रन्थ निर्माण-काल का वर्णन नहीं किया है। अतः उसे नहीं जाना जा सकता। अनुमान अर्थापत्ति अनुपलब्धि आदि से कुछ जाना जा सकता है। कुछ ग्रन्थों का पौर्वापर्य बाद में दिखायी देता है।

परमतसहिष्णुता

गुरु रामतीर्थ के आदेश से मधुसूदन ने व्यासाचार्यकृत *न्यायामृत* ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति का खण्डन करते हुए *अद्वैतसिद्धि* नामक ग्रन्थ में अद्वैतवेदान्त सिद्धान्त का सुदृढ़ता से प्रतिपादन किया। तब अद्वैतसिद्धान्त भारत के बहुत से भागों में प्रचरित हो गया। दक्षिणात्य कर्णाटदेशवासी व्यासाचार्य ने भी अद्वैतसिद्धान्त ग्रन्थ देखा। यह ग्रन्थ पढ़कर व्यासाचार्य दुखी हुए। उन्होंने सोचा माध्वमतानुसार उनके द्वारा रचित *न्यायामृत* का किस तरह मधुसूदन ने निराकरण किया उससे लोगों के मन में माध्वमत के प्रति आस्था होगी। तब व्यासाचार्य ने न्यायशास्त्री अपने मेधावी शिष्य को कहा—व्यासराम। इस समय माध्वमत समुदाय पर बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी है। *न्यायामृत* ग्रंथ में जैसी तर्क-पद्धति से युक्तिपूर्वक अद्वैतमत का निराकरण किया है उससे मैं मानता हूँ माध्वमत का खण्डन नितान्त कठिन है। पर तरुण युवक मधुसूदन के *अद्वैतसिद्धि* ग्रन्थ को देखकर मेरी सारी आशा जल गयी है। मैं वृद्ध इस समय अद्वैतसिद्धि का निराकरण करने में असमर्थ हूँ। तुम न्यायशास्त्री भी हो, मेधावी भी। तुम मधुसूदन के पास जाकर

उसके शिष्य होकर उस अद्वैतसिद्धि को पढ़कर माध्वमत से अद्वैतसिद्धि अयुक्त है बताकर उस अद्वैतमत का निराकरण करो ताकि माध्वमत सुरक्षित रह सके अन्यथा माध्वमत विलुप्त ही हो जाएगा। तुम्हें ही यह महान् कार्य करना है। व्यासाचार्य द्वारा यह कहने पर व्यासराम गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके 'तथास्तु' कहकर सुदूर कर्णाटदेश से वाराणसी की ओर रवाना हुए। वहाँ मधुसूदन के पास उपस्थित होकर व्यासराम अपने अभिप्राय को न दिखाकर अद्वैतसिद्धि के अध्ययन में प्रवृत्त हो गयें। मधुसूदन ने व्यासराम के अभिप्राय को जान लिया जानकर भी कुछ कठोरता न प्रकट करके बिना कुछ कहे उन्हें सादर *अद्वैतसिद्धि* ग्रन्थ पढ़ाया। व्यासराम ने अतीव परिश्रम से *अद्वैतसिद्धि* ग्रन्थ को पढ़ते हुए रात्रि में दो प्रकार से दोनों पुस्तकों पर पृथक्-पृथक् लेख लिखे। *अद्वैतसिद्धि* का अध्ययन पूरा होने पर एक तरंगिणी टीका की पुस्तक मधुसूदन को देकर दूसरी प्रति लेकर स्वयं कर्णाट देश जाने लगे। जाते हुए व्यासराम को मधुसूदन ने हँसकर कहा—"वत्स मैंने यह पहले ही जान लिया था कि तुमने अद्वैतमत की निराकरण के लिए ही मेरा शिष्यत्व ग्रहण किया। मैं और मेरा कोई भी शिष्य उसका निराकरण नहीं करेगा।"

उत्तर काल में मधुसूदन के शिष्य बलभद्र ने अद्वैतग्रन्थ की सिद्धि टीका में तरंगिणी मत का निराकरण किया। ब्रह्मानन्द ने भी *अद्वैतसिद्धि* की लघुचन्द्रिका टीका में तथा *बृहत्चन्द्रिका* टीका में तरंगिणीकार के मत का निराकरण किया। ब्रह्मानन्द मधुसूदन के शिष्य नहीं थे। वे परमानन्द सरस्वती के शिष्य थे।

वृंदावनवासी चैतन्य महाप्रभु पार्षद के श्री रूपगोस्वामी के शिष्य जीवगोस्वामी ने एक बार काशी में वृंदावन से आकर मधुसूदन से अद्वैतवेदान्त पढ़ने की इच्छा व्यक्त की। उनका भी अभिप्राय अद्वैतवेदान्त जानकर उसका निराकरण करके द्वैत मत की सुदृढ़ स्थापना करना था। अतः उन्होंने भी अपने अभिप्राय को उद्घाटित न करके मधुसूदन से अद्वैतवेदान्त ग्रन्थ पढ़ा। मधुसूदन ने भी उनका अभिप्राय जानते हुए वेदान्ताध्ययन का समर्थन करते हुए वेदान्त पढ़ाया। श्री जीवगोस्वामी ने मधुसूदन से अद्वैतवेदान्त सुनने व अधिग्रहण के पश्चात् स्वकृत छह ग्रंथों में अद्वैतवेदान्त का निराकरण किया। अप्पयदीक्षित नामक सर्वशास्त्र-निष्णात, प्रवीण, मीमांसा-विशेषज्ञ कोई प्रतिवादी पंडित वाराणसी में रहते थे। उनका जीवन काल 1520 ई. से 1593 ई. तक था। वे मधुसूदन से सात या आठ वर्ष बड़े थे। वे मधुसूदन के गुरु नहीं थे तथापि मधुसूदन ने इनको 'सर्वस्वतन्त्र आचार्य' की उपाधि से अलंकृत करके उनके प्रति अत्यन्त आदर भाव प्रकट किया। इसी रूप में गुणिजन की पूजा उनका व्रत हो गयी।

वाराणसी में वेदान्त ग्रन्थ रचना के बहुत बाद वृद्धावस्था में मधुसूदन का एक बार नवद्वीप में आये। वहाँ विद्यागुरु मथुरानाथ का सानिन्ध्य प्राप्त किया। मथुरानाथ अति वृद्ध हो गये थे। इस अवस्था में भी (वृद्धावस्था में) दृष्टिक्षीण होने पर भी काग़ज़

आँखों के अति समीप लाकर व्यास ग्रन्थ की टीका लिख रहे थे। उसे देखकर मधुसूदन ने कहा—तर्क के रूखे विचारों से भरी हुई जानकारी मन को अकुशलता प्रदान करती हैं उसे आप इस वृद्धावस्था में भी क्यों अपनाए हुए हैं। यह सुनकर मथुरानाथ ने प्रसन्न होकर श्लोक का चतुर्थपद पूर्ण करते हुए कहा कौन-सी धातु है जो वांछित को सिद्ध नहीं करती।

6

वेदान्त प्रचार

अब नवद्वीप में रघुनाथशिरोमणि वासुदेव सार्वभौम आदि प्रखर पण्डित दिवंगत हो गये। जगदीशतर्कालंकार भी वृद्ध हो गये। गदाधर भट्टाचार्य तरुण थे और अध्ययन कार्य में लगे हुए थे उनके गुरु हरिराम तर्कवागीश अति वृद्ध थे। अन्य भी वहुत से नैयायिक थे। मधुसूदन ने गदाधर भट्टाचार्य का आतिथ्य ग्रहण किया। गदाधर नैयायिक संन्यासी वेदान्तिक मधुसूदन को पाकर प्रसन्न थे तथा अपने ही घर में मधुसूदन का अतिथि सत्कार किया। नवद्वीप के लोग गदाधर के घर आकर वाराणसी के संन्यासी मधुसूदन को प्रणाम करके उपदेश आदि को सुनकर परम प्रसन्न होते थे। गदाधर का घर उत्सव स्थल हो गया था। मधुसूदन तथा और पण्डित भी एकत्रित होते थे। गदाधर ने न्याय वेदान्त आदि शास्त्रों में मधुसूदन की ज्ञान निपुणता देखकर उन्हें साधुवाद दिया। मधुसूदन भी तरुण गदाधर की न्यायप्रतिभा तथा वेदान्त मत में आस्था देखकर वहुत प्रसन्न हुए। अन्य प्रवीण नैयायिक गदाधर के घर आकर न्याय-विचार का प्रस्ताव करते हुए वैसा ही करते थे। मधुसूदन को प्रतिभा सम्पन्न जानकर उसके चरणों में सिर लगाते थे। तार्किक गदाधर न्याय व द्वैतमतावलम्बी होने पर भी मधुसूदन की संगति से अद्वैतमत के अनुरागी हो गये। मधुसूदन का छात्रावस्था में जगदीश के साथ परिचय था। मधुसूदन को जगदीश के आने से बहुत आनन्द मिला तथा जगदीश भी मधुसूदन के पाण्डित्य ज्ञान निपुणता वेदान्तनिष्ठा तथा वैराग्य को देखकर गुरु की तरह सम्मान करने लगे। मधुसूदन के प्रति महामति जगदीश के अहंकार विगलन के बारे में सुनकर सभी कहने लगे कि नवद्वीप के नैयायिक पराजित हो गये। यह सुनकर तथा शिष्यों की उन्नति देखकर मथुरानाथ का मन गर्व अनुभव करने लगा। मधुसूदन के वैराग्य साधुमन, त्याग, तितिक्षा, समता, धैर्यादि को देखकर नवद्वीप के साधारण लोग मुग्ध हो गये। उन्होंने श्लोक रचना करके सर्वत्र प्रचार किया—

"नवद्वीपे समायाते मधुसूदनवाक्पतौ।
चकम्पे तर्कवागीशः कातरोऽभूद् गदाधरः ॥"

परमविद्वान् मधुसूदन के नवद्वीप में आ जाने पर तर्कवागीश काँपने लगे और गदाधर भी कातर हो गये।

कुछ लोग ऐसा भी कहने लगे—

"मथुरायाः समायाते मधुसूदनवाक्पतौ।
अनीशो जगदीशोऽभूत् कातरोऽभूत् गदाधरः ॥"

परमविद्वान् मधुसूदन के मथुरा से आ जाने पर जगदीश भी अनीश हो गये। गदाधर कातर हो गये। इस प्रकार मधुसूदन की महिमा सारे नवद्वीप में प्रचरित हो गयी। मधुसूदन के मन में विजय की अभिलाषा नहीं थी। वह तत्त्वान्वेषण के कारणों में तत्त्वनिष्ठ ही रहे। अतः लेशमात्र विजय की अभिलाषा भी कहाँ हो सकती थी। गुरु रामतीर्थ के आदेश से उन्होंने माधव मत का निराकरण करते हुए अद्वैतसिद्धान्त की स्थापना करने वाली *अद्वैतसिद्धि* नामक कृति की रचना की। उनका उद्देश्य अन्य मत का निराकरण करना नहीं था। अतः उन्होंने नवद्वीप में पण्डितों के साथ शास्त्र चर्चा नहीं की परन्तु नवद्वीप आदि द्वीपों में वेदान्त का उपदेश दिया। बहुत लोग श्रद्धा-सहित उनके वेदान्तोपदेश का पान करके स्वयं को धन्य मानते थे। उनके पास जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती। इस प्रकार कुछ समय तक वहाँ वेदान्त प्रचार करके मधुसूदन पुनः वाराणसी लौट आए।

वाराणस्यां तथा शिष्या बभूवुर्विबुधोपमाः।
वेदान्ते तस्य भक्ता येऽसंख्याताः शान्तमानसाः॥1॥
इतिहासे न लिख्यन्ते कालधर्मप्रभावतः।
तद्देहविगमेनैव सार्धं स्मृतिवियोगतः ॥2॥
वेदान्ते तस्य बोधस्य प्रमाणं शास्त्रविस्तारः।
श्रवणान्मननाध्यानाद् बुध्यते पण्डितैरिह ॥3॥
यदिच्छया कृतो ग्रन्थः सिद्धान्तबिन्दुनामकः।
बलभद्रः स शिष्यः स्यात् सरस्वत्याः प्रियो हि सः ॥4॥
अद्वैतसिद्धिटीकायाः सिद्धिनाम्न्याः प्रबन्धकः।
विख्यातो बलभद्रोऽसौ ब्रह्मचारीति कीर्तितः ॥5॥
शंकराचार्यपादानां सर्वसिद्धान्तसंग्रहः।
शेषगोविन्दनामाऽसौ तस्य टीकां करोति यः ॥6॥
असावपि प्रियः शिष्यः सरस्वत्या न संशयः।
टीकाग्रन्थेऽलिखत् प्रेम्णा मद्गुरुर्मधुसूदनः ॥7॥
किञ्च स सर्वसिद्धान्तरहस्यग्रन्थटीकान्ते।
अवददतिभक्त्या च मधुसूदनतद्यशः ॥8॥
यत्प्रसादाधीनसिद्धिपुरुषार्थचतुष्टयम्।
सरस्वत्यवतारं तं वन्दे श्रीमधुसूदनम् ॥9॥

इति श्रीशेषपण्डितसुतशेषोत्तरश्च हि।
गोविन्दरचितस्यैव सर्वसिद्धान्तरहसि।
विवरणे समाप्तश्च भाट्टपक्षो मदीयकः ॥10॥

1. वाराणसी में मधुसूदन के शिष्य बहुत विद्वान् थे। वेदान्त के भक्त थे और शान्त मन वाले तथा असंख्य थे।

2. काल-धर्म के प्रभाव से इतिहास में उनका उल्लेख नहीं है और उनके शरीर छोड़ने के साथ ही उनकी याद भुला दी गयी।

3. वेदान्तशास्त्र को शास्त्र का अध्ययन, श्रवण, मनन आदि से ही पण्डित लोग विस्तार से जान सकते हैं।

4. जिस कामना से सिद्धान्तबिन्दु ग्रन्थ की रचना की गयी उनका वह बलभद्र शिष्य सरस्वती का वरद पुत्र है।

5. अद्वैतसिद्धि नामक ग्रन्थ की टीका जिसका नाम सिद्धि था उसके लिखने वाले वे बलभद्र ब्रह्मचारी के रूप में विख्यात हुए।

6. शंकराचार्य महाराज के सभी सिद्धान्तों के संग्रह पर जिन्होंने टीका की है उनका नाम शेषगोविन्द है।

7. ये भी सरस्वती के वरद पुत्र थे। इसमें कोई संदेह नहीं है, उन्होंने अपनी टीका में लिखा है कि मधुसूदन जी मेरे गुरु हैं।

8. उन्होंने सर्वसिद्धान्त रहस्य नामक ग्रन्थ की टीका के अन्त में अत्यन्त आदरपूर्वक मधुसूदन के यश का बखान किया है।

9. जिनकी कृपा से सिद्धि और चारों पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त होते हैं, इन सरस्वती के अवतार श्री मधुसूदन को मैं नमस्कार करता हूँ।

10. इस प्रकार श्री शेषपण्डित के पुत्र शेषोत्तर ने गोविन्द रचित सर्वसिद्धान्त-रहस्य पर विस्तारपूर्वक मेरे पक्ष का विवरण दिया है।

इसके अनन्तर उन्होंने कहा—

"गुरुणा मधुसूदने यत्करुणापूरितचेतसोपदिष्टम्।
तदिदं प्रकटीकृतं मयाऽस्मिन् भगवच्छङ्कर पूज्यपादमूले ॥11॥
आसीच्चापर शिष्योऽयं मधुसूदनवाक्पतेः।
पुरुषोत्तमनामाऽसौ सरस्वत्युपधानकः ॥12॥
सिद्धान्तबिन्दुशास्त्रस्य व्याख्याभूतां प्रणीतवान्।
टीकामेकां च स प्राह मधुसूदनो मे गुरुः ॥13॥
एवं च बलभद्रोऽसौ शेषगोविन्दसंज्ञकः।
सरस्वत्युपाधानश्च पुरुषोत्तमनामकः ॥14॥

त्रयः शिष्या बभूवुर्वै मधुसूदनदेशिके।
अन्येऽपि वहवोऽभवच्छिष्यास्तस्य मधुद्विषः।
न गीयन्ते च नामानि नानाख्यानश्रुतान्यपि ॥15॥
शेषपण्डितपुत्रोऽयं शेषगोविन्दनामकः।
मधुसूदनशिष्योऽसौ गुरुभक्ति समन्वितः ॥16॥
शेषपण्डितनाम्ना यः कृष्णपण्डितनामकः ।
भट्टोजिदीक्षिताचार्यो वैयाकरणकेसरी ॥17॥
व्यासरामी मध्वमते तरङ्गिणीकृदेव सः।
मधुसूदनशिष्योऽसौ निबन्धेऽस्मिन् पुरोदितः ॥18॥
व्यासाचार्यस्य शिष्योऽसौ यद्यपि व्यासरामकः।
तथापि मधुसूदनाद्द्वैतसिद्धिपाठकः ॥19॥
जीवगोस्वामिपादोऽसौ नानाग्रन्थ प्रबन्धकः।
द्वैतमतप्रविष्टोऽपि मधुसूदन शिष्यकः ॥20॥
अद्वैतमतसिद्धान्तानधीते मधुसूदनात्।
यतोऽसौ तेन शिष्यः स्यान्मधुसूदनवाक्पतेः॥21॥
सन्तयन्येऽपि कियन्तो ये वेदान्ते मधुसूदनात्।
सिद्धान्तं श्रुतवन्तस्ते तेषां निरूपणं न हि ॥22॥
एवमद्वैतसिद्ध्यदिग्रन्थान् सप्तदशाथवा।
मतान्तरेण विंशतिर्विरचऽय महामतिः ॥ (23)
वेदान्तशास्त्रत्वं प्रचार्य विस्तरेण वै।
शान्तो दान्तस्तितिक्षुः स्याद्वेदान्तमूर्तिरूपकः।
लोकानामकरोत् कर्म कल्याणं मधुसूदनः ॥24॥

सिद्धान्त-बिन्दुशास्त्र की व्याख्या के रूप में इस टीका को मैंने रचा है, ऐसे मैंने अपने-अपने गुरु मधुसूदन के कहने पर किया है। (13)

इसी प्रकार शेषगोविन्द अनामधारी बलभद्र भी मधुसूदन के शिष्य थे। पुरुषोत्तम नामक शिष्य भी देवी सरस्ती के आराधक थे। (14)

मधुसूदन के और भी तीन शिष्य थे तथा उनकी आलोचना करने वाले भी और कई थे जिनके नाम और ज्ञान के बारे में यहाँ नहीं कहा जा रहा है। (15)

शेषपंडित के पुत्र शेषगोविन्द नामक मधु के शिष्य थे और इनके मन में गुरु के प्रति अतीवभक्ति थी। (16)

शेषपंडित नाम के कृष्णपंडित नामक भट्टोणि दीक्षित आचार्य हुए जो व्याकरण में अति विलक्षण थे। (17)

इस निबन्ध में मधुसूदन के शिष्य व्यासराम जी, जिन्होंने माध्वमत पर शिरोमणि टीका लिखी उनके बारे में पूर्व में ही कहा जा चुका है। (18)

यद्यपि व्यासाचार्य के व्यासराम शिष्य थे तथापि व्यासरामजी ने मधुसूदन से अद्वैतसिद्धि का अध्ययन किया। (19)

जीवगोस्वामी महाराज ने भी अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। यद्यपि द्वैत मत के विद्वान् थे तथापि मधुसूदन के शिष्य थे। (20)

इन्होंने मधुसूदन से अद्वैतसिद्धान्त का अध्ययन किया जिससे वे परम विद्वान् मधुसूदन के शिष्य बन सके। (21)

और भी अनेक विद्वान् हुए हैं जिन्होंने मधुसूदन से वेदान्त सिद्धान्त को सुना उनका निरूपण हम यहाँ नहीं कर रहे हैं। (22)

इस प्रकार परम बुद्धिमान् इन्होंने सत्रह अथवा बीस *अद्वैतसिद्धि* आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया। (23)

मधुसूदन ने वेदान्तशास्त्र का तत्त्व विस्तार से लोगों में प्रचारित किया। वे बड़े शान्त स्वभाव के मन से उदार सहिष्णुता से पूर्ण मानो वेदान्त की मूर्ति थे और इन्होंने अपने कर्म से लोगों का परम कल्याण किया। (24)

भक्ति द्वारा ज्ञान का समन्वय

अद्वैतवाक्यजन्य ज्ञान मैं शरीर नहीं हूँ, इन्द्रिय नहीं हूँ, बुद्धि नहीं हूँ··· न पञ्चभूत हूँ न अव्याकृत हूँ।

परन्तु सत्य ज्ञानानन्द ब्रह्म हूँ इत्यादि रूप में सर्वद्वैतभेद वर्जित हैं। भक्ति ईश्वर मेरे भक्त हैं मैं प्रभु का दास, सखा या प्रिय हूँ। इस प्रकार की द्वैत विषयी चित्तवृत्ति हूँ। अतः ज्ञान के साथ भक्ति का विरोध है। ब्रह्म व आत्मा का एकत्वानुसन्धान भक्ति है। भक्ति-स्वरूप से ब्रह्मात्म-भेद-भावना बदलती जाती है। भेदभाव रहित होने से ज्ञान के साथ भक्ति का कोई विरोध नहीं है। *विवेकचूड़ामणि* में कहा गया है :–

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥
स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः। *वि.चू.*-32-33

मोक्ष के सभी साधनों में से केवल भक्ति ही सर्वोत्तम है। अपने स्वरूप को पहचान लेना, प्राप्त कर लेना वास्तव में भक्ति है और आत्मत्व का अनुसंधान कर लेना भक्ति है ऐसा कुछ लोग कहते हैं उचित है।

कुछ ने ऐसा कहा है वह जो उचित नहीं है ईश्वर में वह प्ररानुरक्ति है। तत्रसमीचीनम्, सा परानुरक्तिरीश्वरे (*शा.भ.सू*-1/2) शाण्डिल्य भक्ति सूत्रानुसार वह

परम प्रेम रूप है। (सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा) (*ना.भ.सू.*1/2) नारदीयभक्ति सूत्रों के अनुसार ईश्वर में परमानुरक्तिरूप भक्ति को जानने से भेद है। ईश्वर में द्वैतभावात्मक अनुरक्ति है, अद्वैतभाव रूप नहीं। अद्वैतभाव में भक्ति नहीं होती है। कहा भी है भक्ति द्वारा मुझे जाना जाता है। (भक्तिः मामभिजानाति) (*गीता*-18/55) इस प्रकार के भगवत् वचनों द्वारा भी भक्ति तथा ज्ञान का प्रतिपादित होता है। भक्ति मन में द्रवीभावपूर्वक भगवदाकार सविकल्प वृत्तिरूप होती है। (द्रवीभावपूर्विका हि मनसो भगवदाकरता सविकल्पवृत्तिरूपा भक्तिः (*भक्तिरसायनम्*, 1/2 श्लोकस्य व्याख्या) *भक्ति रसायन* में मधुसूदन ने भक्ति के बारे में कहा है—स्वरूप-निर्णय का ज्ञान होने से भक्ति व ज्ञान का अभेद जानने से भक्ति व ज्ञान का पारस्परिक सम्बन्ध है परन्तु एकत्व नहीं है।

परन्तु मधुसूदन ने प्रतिपादित किया है कि भक्ति और अद्वैत ज्ञान का समुच्चय दिखायी देता है। *सिद्धान्त बिन्दुशेष* में उन्होंने कहा है—

वेदान्त वाक्य के उत्पन्न अखण्डाकार होने से अविद्या के दूर होने पर उससे कल्पित अर्थ की निवृत्ति होने पर परमानन्द स्वरूप होने पर परमानन्द स्वरूप होते हुए कृतकृत्यता प्राप्त होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारहवें एवं सत्तरहवें श्लोकों के बारे में *गूढ़ार्थदीपिका* में कहा गया है—इसलिए केवल जप करने से ज्ञान-यज्ञ का फल प्राप्त होता है और आत्म शुद्धि ज्ञान से उत्पन्न होती है। इसके अर्थ का अनुसंधान करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये मोक्ष ही दूसरा नाम है। किंतु भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य ने *गीता* की व्याख्या के प्रसंग में बताया है कि कर्म निष्ठा और ज्ञाननिष्ठा दो भिन्न बातें हैं। मधुसूदन ने कहा है कि :—

भाष्यकारों ने ज्ञाननिष्ठारूपात्मक ऐक्यानुसन्धान रूप जो भक्ति बतायी है वह भजन ज्ञान के, अभाव के कारण ज्ञान रूप ही है—भक्ति रूप नहीं। और भी भक्ति से मुझे जानता है, भाष्यकार ने गीतावाक्य की व्याख्या में कहा है—ज्ञानलक्षण भक्ति से मनुष्य जान सकता है कि मेरा स्वरूप क्या है।

मधुसूदन के मत में ज्ञानसंयुक्त भक्ति स्वीकार की गई है। उस भक्ति का ज्ञान के साथ विरोध नहीं है। ऐसा इन वाक्यों से ज्ञात होता है। भाष्यकारों के मत में उस प्रकार की भक्ति के साथ भी ज्ञान का समुच्चय नहीं है। यह बताया गया है।

मधुसूदन के मतानुसार ज्ञानमिश्र भक्ति का ज्ञान के साथ जो सम्बन्ध है उसके प्रमाण स्वरूप यह वाक्य उद्घृत किया गया है—एक बार अद्वैतवेदान्तज्ञानमार्गावलम्बी कुछ संन्यासी मधुसूदन की श्रीकृष्ण की पूजा-अर्चना के बारे में जानकर उनके पास आकर कहने लगे—महात्मन्! आप अद्वैतज्ञान-निष्ठ संन्यासी हैं फिर कैसे द्वैतभाव से श्रीकृष्ण पूजन करते हैं। यह सुनकर मधुसूदन बोले—

अद्वैत साम्राज्य की राह पर चलने वाले हमें तथा विश्व के सम्पूर्ण वैभवों को

तृणवत् मानने वाले हमें उन गोपियों के साथ रास रचनेवाले अपनी इच्छा को प्रधानता देने वाले किसी तत्त्व ने (कृष्ण ने) बलात् हमें अपना दास बना लिया है। इस दास्य-भाव-भक्ति के संकेत से मधुसूदन ने ज्ञान का समुच्चय अंगीकार किया था।

ज्ञान-मिश्रित भक्ति की अपेक्षा उससे भिन्न शुद्ध भक्ति का आत्मैक्य ज्ञान सम्बन्ध से रहित होने का तत्त्व मधुसूदन को रुचिकर था यह इस वाक्य से ज्ञात होता है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय की व्याख्या में आरम्भ में उन्होंने कहा है ज्ञान और अभ्यास में अपने मन को पूरी तरह लगा देनेवाले योगी लोग उस परम तत्त्व को निर्माण, निष्क्रिय एवं ज्योतिर्मय देखते हैं तो देखा करें किन्तु हमारे लिए तो यमुना के किनारे पर घूमने वाले वही श्यामसुन्दर हमारे आँखों के चमत्कार के लिए सदा-सदा के लिए बने रहे। इस प्रकार इससे चिरकाल तक साकार भगवान् के रूप दर्शन की प्रार्थना से तथा निर्गुण ब्रह्म ज्ञान से उसके दर्शन का विरोध होने पर भी वैसे दर्शन की प्रार्थना से भगवदाकार चित्तवृत्ति प्रवाह रूप प्रेम कलिका मधुसूदन ने पुरुषार्थ स्वीकार किया ऐसा ज्ञान होता है। यह उनके द्वारा रचित भक्तिरसायन ग्रन्थ के समालोचन में बाद में देखेंगे।

श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के छियासठवें श्लोक में व्याख्या प्रसंग में मधुसूदन स्वामी ने कहा—मैं उसी का हूँ, वो मेरा ही है, मैं नहीं हूँ यह तीन भाव भगवान् की शरण में जाने के लिए साधना और अभ्यास का फल माने जाने चाहिए। उनमें से पहले का उदाहरण है—भगवान् शंकराचार्य ने लिखा है कि हे नाथ, मुझमें और आप में भेद न भी रहे अर्थात् अद्वैतावस्था में भी मैं आपका हूँ आप मेरे नहीं है जिस प्रकार लहर समुद्र की होती है, समुद्र लहर का नहीं होता।

दूसरे का उदाहरण है—हे कृष्ण! आप बलात् हाथ उठाकर जा रहे हैं तो इसमें क्या विचित्र है। जब आप मेरे हृदय से निकल जायेंगे तब मैं आपकी शक्ति को मान जाऊँगा। तीसरे का उदाहरण है यह सम्पूर्ण विश्व और मैं परमपुरुष परमेश्वर और मैं हे नारायण, एक ही है। अल्पमति अनन्त भगवान् के हृदयंगत होने पर उनको दूर से छोड़ दिया है। यह दूत के प्रति यम का कहना है। अम्बरीश प्रह्लादगोपी आदि इसकी भूमिका में उदाहरण बन सकते हैं।

भगवतशरणरूप भक्ति तीन प्रकार की बतायी गयी है। उनमें अन्तिम शरणता है और ब्रह्म व जीव में सहायता लेने के कारण अद्वैतभावरूप है। प्रथमा द्वितीय-शरणता है वह अद्वैतज्ञाननिष्ठा पर निर्भर नहीं है। प्रथम स्थिति में भेद दूर होने पर कि मैं आपका हूँ इसका अभिप्राय है कि अंश और अंशी के रूप में भेद ज्ञान शेष है ऐसा माना गया है। दूसरी स्थिति में वह मेरा ही है यह अभिमान होने के कारण वहाँ भी द्वैतभाव से सम्बन्ध शून्य-ज्ञान है अथवा द्वैतभाव सम्बन्ध से शून्य ज्ञान है अतः यह पहली और दूसरी भगवान् की शरण गति रूपी भक्ति द्वैतभाव से मुक्त है। वह भी ज्ञान निष्ठा नहीं है। ऐसी बात नहीं है। भाष्यकार के मूल में यह मोक्षदायिनी है।

मधुसूदन ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अतिरिक्त प्रेम-भक्ति को परम पुरुषार्थ रूप में स्वीकार किया है। यह हम भक्ति-रसायन की आलोचना के प्रकरण में बतायेंगे। इस प्रकार की भक्ति के तत्त्व मधुसूदन में थे, ऐसा इन वाक्यों से सिद्ध होता है। यद्यपि ज्ञान-निष्ठा रूप भक्ति की विद्यमानता का मधुसूदन में थी ऐसा अनेक बोध वाक्यों से पता चलता है। किसी दूसरे विषय में मतभेद होने पर भी मधुसूदन ने सर्वत्र भाष्यकार में भक्ति और विनय प्रदर्शित किया है। फिर ज्ञान निष्ठा भक्ति की अपेक्षा प्रेम रूप भक्ति उनको अधिक अच्छी लगती थी। यह इन वाक्यों से ज्ञात होता है। हम इस बात को पहले कह चुके हैं। जैसे गीता टीका व्याख्या में कहा है—भगवद्भक्ति निष्ठा अभयसाधनभूत उभयफलभूत होती है इस तरह उपसंहार करके सभी धर्मों को छोड़कर मात्र मेरी शरण में आओ। इससे भाष्यकार ने ज्ञाननिष्ठा को परिपक्वता दी है। भगवान् के आशय का वर्णन करने में हम कहाँ समर्थ हो सकते हैं? परमपुरुष भगवान् कृष्ण की उपनिपदों से पूर्ण वाणी जो गीता के रूप में है उसके रहस्य की व्याख्या में भला किस प्रकार निपुण हो सकते हैं। मैं तो जानता हूँ कि मैंने उस व्याख्या को किया है तो वह मेरा बचपना है।

कई बार अहेतुक स्नेह के कारण भी इस प्रकार की विलक्षणताएँ हो जाती हैं। *सिद्धांतबिन्दुशेष* में कहा है—मैं सम्पूर्ण अर्थ के जानकार भगवान् व्यास की स्तुति नहीं करता। जिन्होंने सूत्र रूप में उस तत्त्व को भली-भाँति नहीं बाँधा है किन्तु उन शंकराचार्य महाराज को और सुरेश्वरजी को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने उन सूत्रों के बिना ही गीता के सम्पूर्ण तत्त्व को एक जगह ग्रथित कर दिया है। भाष्यकार के मतानुसार दो प्रकार की निष्ठा कही गई है—कर्म-निष्ठा और ज्ञान-निष्ठा। मधुसूदन के बारे में कुछ मतभिन्नता भी है।

जो भक्ति साधन भक्ति रूप है वह भाष्यकार के मत में ज्ञाननिष्ठ है। ज्ञाननिष्ठा के साथ उनका कोई भेद नहीं है। भाष्यकार के मत में दो काण्डों से अतिरिक्त काण्डात्मक भक्ति उपासनात्मिका है ऐसा वेद अथवा गीता में भी कहा गया है।

मधुसूदन के मत में तीन प्रकार की भक्ति बतायी गई है। कर्म-मिश्र, ज्ञान-मिश्र और शुद्ध। भक्ति कर्ममिश्र भक्ति कर्म से मुक्त होती है। इस प्रकार भक्ति में कार्य के साथ समुच्चय मधुसूदन ने स्वीकार किया है। ज्ञान-मिश्र भक्ति ज्ञान से समुच्चित है। मधुसूदन ने इस प्रकार की भक्ति में ज्ञान-समुच्चय स्वीकार किया है। भाष्यकारों की इसमें सम्मति नहीं है। ज्ञान के साथ किसी भी कार्य का अथवा उपासना का भक्ति का समुच्चय भाष्यकारों ने स्वीकार नहीं किया। तीसरी जो शुद्धाभक्ति है वह भी भाष्यकार ने स्वीकृत नहीं की है। मधुसूदन ने उसका प्रतिपादन किया है। इस तृतीय शुद्ध भक्ति में ज्ञाननिष्ठा नहीं है। ऐसा कहा जा सकता है क्योंकि शुद्ध भक्ति के दृष्टांत-प्रदर्शन में मधुसूदन ने गोपिकादि का उल्लेख किया है। यदि ज्ञाननिष्ठा शुद्धभक्तिस्वरूप में होगी तो सब ज्ञाननिष्ठा शुकदेव की ज्ञानमिश्र भक्तियुक्त वर्णन,

गोपिवादियों से पृथक् नहीं हो सकते। शुकदेव की तरह गोपिकाएँ ज्ञाननिष्ठ नहीं थीं। अगर इस शुद्ध भक्तिस्वरूप भक्ति का ज्ञान कर्म समुच्चित प्रेम सर्व भक्ति से विलक्षणता है। मधुसूदन के मत में यह स्वीकार है। इस विषय में स्पष्ट करने के लिए दो श्लोक ऊपर बताये गये हैं। प्रथम—ज्ञानाभ्यासवंशीकृते मनसा तथा द्वितीय अद्वैतसाम्राज्यपथाधिरूढा—भक्तिरसायन वाक्य को हम इसके बाद बतायेंगे।

कर्मोपास्तिस्तथा ज्ञानमिति काण्डत्रयं क्रमात्।
तद्रूपाष्टादशाध्यायैर्गीता काण्डत्रयात्मिका ॥4॥
एकमेकेन षट्केन काण्डमत्रोपलक्षयेत्।
कर्मनिष्ठाज्ञाननिष्ठे कथिते प्रथमान्त्ययोः ॥5॥
यतः समुच्चयो नास्ति तयोरतिविरोधतः।
भगवद्भक्तिनिष्ठा तु मध्यमे परिकीर्तिता ॥6॥
उभयानुगता सा हि सर्वविघ्नापनोदिनी।
कर्ममिश्रा च शुद्धा च ज्ञानमिश्रा च सा त्रिधा ॥7॥

कर्म, उपासना तथा ज्ञान के तीन काण्ड हैं, इन्हीं के आधार पर तीन काण्डवाली यह गीता अट्ठारह अध्यायों में पूरी होती है। (4)

यहाँ छह-छह अध्यायों का एक-एक काण्ड मानना चाहिए। कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा ये पहले और अन्तिम काण्ड का विषय है। (5)

इनमें परस्पर पर्याप्त विरोध है इसलिए भगवत् निष्ठा अर्थात् उपासना को बीच के काण्ड में बताया गया है। (6)

दोनों के अनुकूल वह सब प्रकार के विघ्नों को नष्ट करने वाली कर्म योग से मुक्त ज्ञान योग से संयुक्त शुद्ध होती हुई तीन प्रकार की होती है। कर्ममिश्र, शुद्ध तथा ज्ञान मिश्र। (7)

इस प्रकार उन्होंने उपोद्घात में ज्ञान कर्म के 189 अध्याय के छासठवें श्लोक की व्याख्या में मधुसूदन ने स्पष्ट कहा है कि—इस गीता शास्त्र में बहुत बार साध्य साधन भावापन्न तीन प्रकार की निष्ठा कही गयी है। जिसमें कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है। वहाँ कर्म निष्ठा को उन्होंने सब प्रकार के कर्मों से संन्यास पर्यन्त कहकर बताया कि मनुष्य अपने कर्मों से उस परमेश्वर की अर्चना करके सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है एवं संन्यास-पूर्वक श्रवण मनन निदिध्यासन आदि साधनों के साथ ज्ञान निष्ठा के बारे में कहा है कि मनुष्य पूर्णतः मुझे जानकर मुझमें ही प्रवेश कर जाता है और भगवद्भक्ति निष्ठा दोनों प्रकार के साधनों से दोनों प्रकार के फल प्रदान करती है यह बताकर कहा कि सब प्रकार के धर्मों का त्याग करके तुम, एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ और इस सर्वभाष्यकार के 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' श्लोक में सब प्रकार के कर्म—संन्यास के माध्यम से यह कहकर ज्ञान—निष्ठा का परिपाक किया है कि एक

मात्र मेरी शरण में जाओ "भगवान के अभिप्राय का वर्णन करने में हम कहाँ समर्थ हैं क्योंकि–

वचो यद्गीताख्यं परमपुरुषस्यागमगिरां
रहस्यं तद्व्याख्यामनतिनिपुणः को वितनुताम्।

परमपुरुष भगवान् कृष्ण की उपनिषदों की वाणी जो गीता के रूप में है उसके रहस्य को बताने में कौन है जो अपने आपको अति निपुण माने।

भगवद्गीता में कर्मनिष्ठा भक्ति-निष्ठा और ज्ञान-निष्ठा इस प्रकार तीन प्रकार की निष्ठा कही गयी है। भाष्यकार ने कर्मनिष्ठा व ज्ञान-निष्ठा इस प्रकार दो प्रकार की निष्ठा बतायी है। भाष्यकार के मतानुसार ज्ञाननिष्ठा में विरोध होने से कर्म का सम्बन्ध नहीं है। भाष्यकर के मत में भक्ति अति जिज्ञासु आदि तीनों प्रकार के भक्तों के लिए हैं और कर्मनिप्ठा के अन्तर्गत समाहित है। ज्ञान निष्ठा रूप ज्ञानियों की भक्ति ज्ञान रूप ही है। वहाँ भक्ति शब्द के प्रयोग से तात्पर्य भाव से है। भजन का तात्पर्य है भक्ति या जिसके माध्यम से ईश्वर का भजन किया जाए। श्रवणादि साधन रूप जो भक्ति है वह सविकल्प वृत्ति रूप साह्यरूप जो भक्ति है वह भी सविकल्पवृत्ति रूप होने से द्वैत रूप है। भक्ति के साथ ज्ञान का समुच्चय (सम्बन्ध) नहीं है। तो मधुसूदन स्वामी ने कैसे ज्ञान के साथ भक्ति का समुच्चय प्रतिपादित किया हैं। ऐसा उन्होंने कैसे किया। इस बारे में हम बता रहे हैं। भाष्यकारों ने वेदान्त वाक्यजन्य ज्ञान के साथ अथवा उपासना रूप किसी भी कर्म अथवा ज्ञान किंवा उपासना रूप का समुच्चय स्वीकार नहीं किया है। यह बात उन्होंने बहुत बार की है। मधुसूदन ने वेदान्त वाक्य-जन्य ज्ञान के साथ ज्ञान-मिश्र भक्ति का समुच्चय स्वीकार किया है। तीन प्रकार की भक्ति वतायी गई है—कर्म-मिश्र, ज्ञान-मिश्र तथा शुद्ध। कर्ममिश्र भक्ति का ज्ञान के साथ समुच्चय नहीं है। ज्ञान-मिश्र भक्ति का ज्ञान के साथ समुच्चय मधुसूदन स्वामी नें स्वीकृत किया है। भाष्यकारों ने स्वीकार नहीं किया है। मधुसूदन के मत में जो शुद्ध भक्ति है वह शुद्ध प्रेम भक्ति है—उससे ज्ञान की व्याख्या में कहा है—निष्काम भक्त ज्ञानी होती है जैसे सनकादि, नारद, प्रह्लाद, पृथु, शुकदेव आदि। निष्काम शुद्ध प्रेम भक्त जैसे गोपिका अक्रूर, युधिष्ठिर आदि। श्रीमद्भागवत में बहुत प्रमाण हैं। गोपिकादियों में ब्रह्मात्मैक्यज्ञान नहीं है। विस्तार के भय से नहीं लिखा जा रहा है। अनुसन्धाता इसके बारे में स्वयमेव जान जाएँगे।

मधूसूदन का भक्तिभाव सर्वत्र दिखायी देता है। विशेषतः श्रीकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति थी। गीता के पंद्रहवें एवं अट्ठारहवें अध्याय के अन्त में उन्होंने कहा है–

बाँसुरी जिनके हाथ में शोभायमान है जिनका वर्ण नये मेघ के समान है जिन्होंने पीताम्बर पहन रखा है। और जिनके ओष्ठ लाल-लाल बिम्ब फल के समान हैं एवं

जिनका मुख पूर्णचन्द्रमा के समान सुन्दर है। जिनकी आँखें कमल के समान सुन्दर हैं। ऐसे भगवान् कृष्ण से बढ़कर किसी अन्य तत्त्व को मैं नहीं जानता।

वंशीभूषित आदि विशेषणों से यहाँ भगवान् कृष्ण के सगुण रूप का वर्णन किया गया है इसलिए सगुणस्वरूप कृष्ण से परे (या बढ़कर) मैं किसी निर्गुण को अथवा कृष्ण जी से भिन्न मैं किसी रूप को तत्त्व रूप में नहीं जानता हूँ। इस वर्णन से मधूसूदन का सगुण रूप भगवान् कृष्ण के प्रति परम भक्तिमान् होना स्पष्टतया प्रकट होता है।

पंद्रहवें अध्याय के अंत में एक और श्लोक है कि जो लोग विभिन्न प्रमाणों के रहते हुए भी भगवान् कृष्ण की अद्भुत महिमा को नहीं जान सकते हैं वे मूर्ख और नरकगामी हैं।

इस प्रकार *भगवद्गीता* के सातवें अध्याय की व्याख्या के आरम्भ में कहा है—

यद्भक्तिं न विना मुक्तिर्यः सेव्यः सर्वयोगिनाम्।
तं वन्दे परमानन्दघनश्रीनन्दनन्दम् ॥ इति ॥

जिसकी भक्ति के बिना बड़े-बड़े योगियों को मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती मैं उस परमानन्दस्वरूप भगवान् श्री नंदनंदन कृष्ण को प्रणाम करता हूँ।

यद्यपि यहाँ ज्ञान द्वारा जिस श्रीकृष्ण की भक्ति को मोक्ष करके बताने का प्रयत्न किया गया है तथापि साक्षात् भक्ति से मुक्ति होती है। यह अर्थ भी ध्वनित होता है और श्रीकृष्ण-भक्ति का गौरव मधुसूदन के मत में स्पष्ट प्रतीत होता है।

अद्वैतसिद्धि नामक ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद के अंत में इसी प्रकार मधुसूदन की कृष्ण भक्ति परिदर्शित होती है—

अविद्यातत्कार्यात्मकनिबिडबन्धव्यपगमे,
यमद्वैतं सत्यं प्रततपरमानन्दममृतम्।
भजन्ते भूमानं भवभयभिदं भव्यमतयो
नमस्तस्यै नित्यं निखिलनिगमेशाय हरये ॥ (इति)

अविद्या और उससे उत्पन्न कार्यों के कारण उत्पन्न सांसारिक बन्धनों को दूर करने में जिस अद्वैत सत्य और नित्य परमानन्द स्वरूप अमृत तत्त्व को शुद्धि मति विद्वान् सांसारिक भय को दूर करने के निमित्त भजते हैं मैं उन सभी वेदों के ईश भगवान् कृष्ण को प्रणाम करता हूँ।

अद्वैतसिद्धि शेष में भी विष्णु की भक्ति का वर्णन आता है—

यो लक्ष्म्या निखिलानुपेक्ष्य विबुधानेको वृतः स्वेच्छया
यः सर्वान् स्मृतमात्र एवं सततं सर्वात्मना रक्षति।
यश्चक्रेण निकृत्य नक्रमकरोन्मुक्तं महाकुञ्जरम्
द्वेषेणापि ददाति यो निजपदं तस्मै नमो विष्णवे ॥इति

लक्ष्मीजी ने सभी देवों को उपेक्षित करके स्वेच्छा में जिस एक तत्त्व का वरण किया है और जिसको सभी लोग सर्वात्मना स्मरण करते हैं और वे उनको रक्षा प्रदान करते हैं। जिसकी सुदर्शन चक्र से मगरमच्छ का वध करके गजेंद्र को मुक्त किया तथा जो द्वेषवश की गयी भक्ति पर भी अपना पद (मोक्ष) प्रदान करता है उस भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ।

उदयनाचार्य नैयायिक थे और वे द्वैतवादी थे। वे अपनी *न्यायकुसुमाञ्जलि* में ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हुए दो कारिकाएँ लिखते हैं। उन्हीं दो कारिकाओं से उद्धृत करते हुए मधुसूदन ने द्वैतभाव से ईश्वरभक्ति को स्वीकृत किया है। ऐसा कहा जा सकता है। जैसे उन द्वारा कृत *अद्वैतरत्नरक्षण* में–

इत्येवं श्रुतिनीतिसंप्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते
येषां नास्पदमादधाति हृदये ते शैलसाराशयाः
किन्तु प्रस्तुतविप्रतीपविधयोऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः
काले कारुपिक! त्वयैव कृपया ते भावनीया नराः॥

(*न्यायकुसुमाञ्जलि*-5/18)

अस्माकं तु निसर्गसुन्दर! चिराच्चेतो निमग्नं त्वयी
त्यद्धाऽनन्दनिधे! तथापि तव तत्राद्यपि संदृश्यते।
तत्राथ त्वरितं विधेहि करुणां येन त्वयैकात्मतां।
याते चेतसि नाप्नुवाम शतशो याम्याः पुनर्यातनाः ॥

(*न्यायकुसुमाञ्जलि*-5/19)

इस प्रकार वेद शास्त्र के अगाध जल से आप्लावित जिन लोगों के हृदय में यह वात नहीं आती वे पर्वत के समान माने जा सकते हैं किन्तु इसमें सिद्ध सांसारिक बन्धनों उकताए हुए लोग जो चिन्तन करने वाले हैं हे करुणामय, प्रभु ऐसे लोगों पर आप समय-समय पर अपनी कृपा करते रहें।

प्राकृतिक रूप से सुन्दर हमारा तो मन बड़ी देर से आप में मग्न हो चुका है। परन्तु बड़ी गजब की बात है कि आनन्दमय परमेश्वर तुम्हारा स्वरूप आज दिखाई नहीं देता। इसलिए हे नाथ, अपनी करुणा शीघ्र कीजिये जिससे मुझमें और आप में भेद न रहे और आपके चित-विलीन हो जाने के बाद हम सैकड़ों प्रकार की यमराजीय यातनाओं को न सहें।

एवं वेदान्तविज्ञाननिश्चितार्थो हरि भजन्।
तथा लोकेषु तद्धर्ममन्वतिष्ठत् प्रचारयन् ॥1॥
निबध्य विविधान् ग्रन्थान् वाराणस्यां विशेषतः।
छात्रानध्यापयंस्तत्र कृतकृत्यः सदाऽभवत् ॥2॥

सन्न्यासिनोऽपि केचित्य वेदमूर्धानमेव च।
अधीत्य परमानन्दं लेभिरे निश्चयं ततः ॥3॥
या भक्तिः कीर्तिता तेन ज्ञानेन न विरुध्यते।
उक्तं पूर्वत्र तेनैव ज्ञानी स मधुसूदनः ॥4॥

इस प्रकार वेदांत विज्ञान के सिद्धान्त में भजन करते हुए और लोगों में धर्म का प्रचार करते हुए रहने लगे। (1)

अनेक प्रकार के ग्रंथों का निर्माण करके विशेषकर वनारस में छात्रों को पढ़ाते हुए वहाँ सदैव अपने कार्य को पूर्ण करते रहे। (2)

बहुत सारे संन्यासी भी इनसे मुख्य वेदों का अध्ययन करके परमानन्द प्राप्त करते रहे, तथा इस निश्चय पर पहुँचे कि मधुसूदन ने जिस भक्ति के बारे में बताया है उसका ज्ञान से कोई विरोध नहीं है। (3), (4)

उन्होंने *भक्तिरसायन* में भी कहा है—

द्वैतं मोहाय बोधात् प्राग् जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थकल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम् ॥इति

पहले द्वैत मोह का कारण होता है और विवेक द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर द्वैतपरक भक्ति का अर्थ अद्वैत से भी सुन्दर बन जाता है।

भगवान् के प्रति भक्ति करने के लिए निर्धारित द्वैत अद्वैत से भी सुन्दर है। अथवा कहा जा सकता है कि ज्ञान-निष्ठा से उत्पन्न मोक्ष की अपेक्षा भक्ति में आनन्द का अधिक उत्पन्न होता है ऐसा श्रीधर स्वामी ने श्री *भगवद्गीता* की व्याख्या में कहा है। इसके अनुसार ज्ञान निष्ठ मधुसूदन श्रीकृष्ण की भक्ति करते रहे अथवा श्रीकृष्ण भक्ति के द्वारा वे आकृष्ट हुए। *श्रीमद्भागवत पुराण* में लिखा है कि आत्मा में रमण करने वाले निर्द्वन्द्व मुनि लोग भी उस विराट् पुरुष की निष्काम भक्ति करते हैं। भगवान् में यही गुण है।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणों हरिः ॥
(श्रीमद्भागवतम्-1-7 19) इति।
ब्रह्मविच्छुकदेवोऽपि यदा भक्तिमरोचयत्
न दोषाय भवेत्किंचित् सा रुचिर्मधुसूदने ॥1॥
किं च भक्तेः प्रभावो हि श्रुतम् उपनिषत्सु च।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥2॥

इति श्वेताश्वेतरमन्त्रे च व्यक्तमसंशयम्।
अद्वैतिनां भिदा बोधो गुरौ च प्रतिपादिता ॥3॥
भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं गुरुणा सह ॥4॥
तत्त्वोपदेश आचार्यैरुक्तमेतत्र चाद्भुतम्।
मण्डनमिश्रपादर्थमिति लोके सुविश्रुतम् ॥5॥

ब्रह्मवेत्ता शुकदेव जी को भी जब भक्ति प्रिय लगती थी तो मधुसूदन भी यदि भक्ति को उत्तम मानते हैं अथवा भक्ति में रुचि रखते हैं तो किसी प्रकार दोषयुक्त नहीं है। (1)

भक्ति का प्रभाव उपनिषदों में भी श्रुतिगोचर होता है जैसे जिस मनुष्य की प्रभु में परम भक्ति है और जैसे प्रभु में भक्ति है वैसे ही गुरु में भक्ति है उसके लिए गुण प्रकाश में आते हैं। (2)

श्वेताश्वेतरोपनिषद् में मिश्रित रूप से स्पष्ट कहा गया है कि अद्वैतवादियों से भिन्न जो ज्ञान है उसका प्रतिपादन किया गया है। (3)

सदैव भावाद्वैत का आचरण करना चाहिए और कभी क्रियाद्वैत का आचरण नहीं करना चाहिए। अद्वैत तीनों लोगों के साथ है मात्र गुरु के साथ नहीं हैं।

मधुसूदन की वैराग्य परीक्षा

मधुसूदन वाराणसी में वेदान्तादि ग्रन्थों की रचना करते हुए वेदान्त का प्रचार करते हुए योगाभ्यास में मन लगाते हुए कृष्ण की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हुए दैनन्दिन अभ्यासवश हरिचरणकमलोद्भूत पुण्यसलिला भागीरथी में स्नान करते हुए चौंसठ योगिनी घाट स्थल से प्रातःकाल बाहर निकल कर गली में पैदल चलते हुए गंगा में स्नान किया करते थे। वहाँ वे मन्त्रोच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक स्नान करते हुए पुण्यार्थियों को देखा करते थे। कुछ लोग जल में निमग्न रहकर ही संध्याकार्य सम्पादित करते थे। अन्य स्थान करके गीले कपड़ों से पवित्रतापूर्वक पितरों को तर्पण करते थे। कुछ गीले कपड़े भी छोड़कर तीर पर देवादि पितरों का तर्पण करते हुए अन्य स्नान तर्पणादि कार्य समाप्त करते हैं। कुछ तीर पर ही अपना आसन बिछा कर वहीं बैठकर जप करते हैं। कुछ वहीं आसन फैलाकर योगाभ्यास करते हैं। इस प्रकार गंगातट पर आनन्दमग्न लोगों को देखकर परमसुख का अनुभव करते हुए गंगा जल से आत्माभिषेक करते हुए सोपानावली से सामने दिखते हुए ब्रह्ममय तेज से ज्वलन्त जटाजूट समन्वित सभी दिशाओं को आलोकित करते हुए उन्होंने किसी योगीश्वर को देखा। उन्हें देखकर भक्ति से आह्लादित होकर प्रणाम करके अभ्यर्थना की। वह योगीश्वर नाथ सम्प्रदाय के आचार्य महाशक्ति सकलयोग सिद्धि प्राप्त गोरक्षनाथ मधुसूदन के विद्या तप योग ऐश्वर्यादि के बारे में सुनकर उसकी परीक्षा लेने के लिए दूर से ही योगबल से

आकाशमार्ग से वाराणसी में उपस्थित हुए। अपना परिचय देकर उन्होंने कहा—मधुसूदन तुम सिद्ध हो। वहुत समय से मेरे पास चिन्तामणि नामक एक रत्न है परन्तु योगपात्र के अभाव में मैं उसे किसी को दे नहीं पा रहा हूँ। इस रत्न के प्रभाव में इसका स्वामी जब जहाँ जो पाना चाहता है इसके प्रयोग से उसे पा लेता है। यह चिन्तामणि चिन्तनमात्र से काम साध देती है। तुम इससे अपना इच्छित कार्य साध सकोगे। इसे लेकर मुझे कृतार्थ करें। गोरक्षनाथ के ऐसा कहने पर मधुसूदन ने कहा—भगवन्, मुझे किसी प्रकार का अभाव नहीं है मैं परिपूर्ण चिदात्मरूप हूँ। मैं असंग परमात्मा हूँ। मुझे कोई अभाव नहीं है। भावोभावातीत निरंजन एवं अविच्छिन्न रूप हूँ। मुझे रत्न एवं धन से क्या प्रयोजन? तेनत्यक्त्येन भुंजीथाः इस प्रकार सर्व त्याग रूपी अमृत पान का इच्छुक हूँ क्योंकि त्याग से ही अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है ऐसा वेद में लिखा है। आप किसी योग्य पात्र को वह रत्न दे दीजिए।

भगवान् गोरखनाथ ने कहा—इसको देने के लिए इतने समय तक मुझे कोई योग्य पात्र नहीं दिखाई दिया। तुम्हें ही योग्याधिकारी मानकर इसे देना चाहता हूँ। इसे ग्रहण करके मुझे कृतार्थ करो।

मधुसूदन ने सोचा ये महात्मा मुझे ही रत्न देंगे। मैं संन्यासी इस स्वर्ण को लेने से मलिनचित्त हो जाऊँगा। राजर्षि जनक तथा गुरु अष्टावक्र मुनि ने कहा है—विषयों का विषय की तरह त्याग करो। मुझे कुछ कौशल करना चाहिए। यह सोचकर मधुसूदन ने भगवान् गोरखनाथ से कहा—भगवान् यह रत्न मात्र मुझे ही दोगे तो इस रत्न से मैं कुछ कर सकूँगा। इस विषय में आपकी स्वीकृति होगी। तभी इसे मैं ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं।

भगवान् गोरखनाथ ने कहा ठीक है जैसी आपकी इच्छा हो। इसके उपयोग में आपको पूर्ण स्वाधीनता रहेगी। यह कह कर उन्होंने वह चिन्तामणि रत्न मधुसूदन को सौंप दिया। मधुसूदन ने वह रत्न लेकर उन महात्मा गोरखनाथ के सामने ही इसे गंगाजल में फेंक दिया।

गोरखनाथ ने हँसकर कहा, मधुसूदन क्या, यह रत्न हमने योग्य व्यक्ति को नहीं दिया? यह कहकर वह योगीवर सहसा अन्तर्धान हो गये। मधुसूदन भी अपने आश्रम जाकर निश्चिन्त हो गये। कुछ समय बीतने पर मधुसूदन की बाल्यावस्था में उस देश के समीप स्थित चन्द्रद्वीप के राजा कन्दर्प नारायण से लेकर प्रतापनारायण तक (1599 ई. तक) वह राजधानी रहा।

प्रतापनारायण 1560 या 1561 ई. में पैदा हुए। 1599 ई. में प्रतापादित्य जिनका दूसरा नाम प्रतापनारायण था; चन्द्रद्वीप में स्वाधीनता घोषित की। 1603 ई. में मानसिंह ने उसके राज्य यशोहर पर आक्रमण किया। 1604 में मानसिंह मन्त्रित्व छोड़कर आगरा नगर आ गया। 1609 में प्रतापादित्य ने ढाका नगरी को राजधानी बनाया। प्रतापनारायण ने जिनका दूसरा नाम प्रतापादित्य था। बाल्यावस्था से ही अपने

देश में उत्पन्न मधुसूदन की विद्या योग, ऐश्वर्य पाण्डित्य कवित्व शक्ति तथा अन्य गुणों को बाल्यावस्था से ही सुना। प्रतापादित्य ने यह भी सुना कि भारत सम्राट् अकबर मधुसूदन की योगसिद्धि विद्या वैराग्य आदि गुणों से आकृष्ट होकर उनके प्रति श्रद्धा भक्ति रखने लगा था। यही कारण था कि प्रतापादित्य बहुत समय पूर्व से ही मधुसूदन के दर्शनोत्सुक थे। समयाभाव से इतने समय तक दर्शन नहीं हो सके थे। इसी समय प्रतापादित्य किसी काम से बादशाह की राजधानी दिल्ली वाराणसी होते हुए गये। विश्वनाथ के दर्शन आदि समाप्त करके एक बार चौंसठ योगिनी घाट पर मधुसूदन का आवासस्थल का पता करके वहाँ गये। मधुसूदन के दर्शन करके प्रणामादि करके उनके सम्मुख स्वर्ण रत्नादि देने की इच्छा व्यक्त की। उनके वचन सुनकर मधुसूदन ने उस दान का सर्वथा प्रत्याख्यान किया। प्रतापादित्य ने भग्नाश पड़े चौंसठ योगिनीघाट के ध्वंसावशेषों का जीर्णोद्धार किया।

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(*गीता* 9/22)

अनन्य भाव से जो लोग मेरी उपासना करते हैं मैं अपने उन भक्तों के योगक्षेम की पूरी तरह रक्षा करता हूँ।

इस प्रकार भगवद्वाक्य प्रमाणित हो गया। वह चौंसठ योगिनीघाट अभी भी अक्षत होने से प्रतापादित्य का पुण्य धारण करता है। यद्यपि मधुसूदन का मठ और गोपाल मन्दिर स्तूपमग्न हैं तथापि चौंसठ योगिनीघाट अक्षत होने से पुण्यकर्मा वहाँ स्नानादि नित्यकर्म सम्पन्न करते हैं।

एवमक्षयकीर्तिः स मधुसूदनसंयमी।
ध्यायन्नर्चंस्तधा शास्त्रं रचयन् काशीक्षेत्रतः ॥
हरिद्वारं गतस्तीर्थं कदाचित्पुण्यमालयम्।
देवानां वासभूमिं वां परमानन्ददायिकाम् ॥
को वा जानात्यभिप्रायं महापुरुषबुद्धिगम्।
विधातुरन्यलोकोऽयमिन्द्रियमात्रबोधकः ॥
विशेषतस्तु संन्यासी यतवाक्कायमानसः।
स्वतन्त्रश्चरति त्यागी साक्षिरूपोऽनिकेतनः ॥

संयम अक्षयकीर्ति मधुसूदन ध्यान अर्चना शास्त्र रचते हुए काशी क्षेत्र में रहे। पुण्यालय देववासभूमि परमानन्दाय पुण्यालय हरिद्वार तीर्थ में गये। महापुरुष के तत्त्व को अथवा आशय को कौन साधारण मनुष्य जान सकता है। परमात्मा की इस सृष्टि में आम लोग मात्र इन्द्रियजन्य ज्ञान ही रखते हैं। यहाँ संन्यासी लोग विशेषकर तन-मन

और वाणी पर पूर्ण नियन्त्रण रखनेवाले और आत्मा का साक्षात्कार करनेवाले स्वतंत्र पुरुष बिना आवास के रहते हैं।

योग बल से देह त्याग

हरिद्वार में रहते हुए पुण्यात्मा वैराग्यपूर्वक रहते हैं। तब वहाँ उन दिनों लोगों की भीड़ थी इसलिए मधुसूदन वहाँ जाकर प्रायः समाधि में मग्न हो जाते थे। उनके कुछ शिष्य वहाँ रहते थे।

मधुसूदन वहाँ जाकर अक्सर समाधि-मग्न रहते थे। कुछ शिष्य उनके साथ निवास करते थे। उन्हें ज्ञात हुआ कि आचार्य का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। एक मास के बाद अपना प्रयाण काल जाकर उन्होंने शिष्यों को स्वशरीर-त्याग की बात बतायी। तब एक बार प्रातःकाल पुण्यसलिला गंगा तीर के पास बैठे थे और समाधिमग्न हो गये। समाधि से पुनः उठने का मूल कारण नष्ट हो गया। शिष्यों और संन्यासियों ने शरीर को विधिपूर्वक पानी में बहा दिया।

इस प्रकार मधुसूदन का जीवनवृत्त संक्षेप में बताया गया। इसके अधिक विस्तार से कुछ ज्ञात नहीं है। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व विशिष्ट व्यक्तियों का जीवन इतिहास इस समय लिखे जाने की तरह नहीं लिखा जाता था। जो कुछ भी मधुसूदन विषयक विवरण प्राप्त होता है वो उनके वंशजों और लेखों से प्राप्त होता है। अन्यत्र प्राचीन ग्रन्थों में ग्रन्थकार ग्रन्थ के प्रारम्भ या अन्त में अपना वंश परिचय ग्रन्थारम्भकाल ग्रन्थसमाप्ति काल का निर्देश नहीं करते थे। मधुसूदन सरस्वती ने पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा से उठकर अपने ग्रन्थों में कहीं भी अपना जन्म-काल, वंश परिचय, ग्रन्थारम्भ काल, ग्रन्थसमाधि काल आदि का वर्णन नहीं किया है। अतः उनके पुण्य-चरित के विषय में जानना दुष्कर है।

7

ग्रन्थ परिचय

मधुसूदनकृत निम्नलिखित प्रकाशित ग्रन्थ प्राप्त होते हैं–

1. श्रीमद्भगवतगीता की गूढार्थदीपिकाटीका।
2. भगवच्छङ्कराचार्यकृत दशश्लोक की व्याख्याभूत सिद्धान्तबिन्दु।
3. अद्वैतरत्नरक्षणम्।
4. अद्वैतसिद्धि।
5. वेदान्तकल्पलतिका।
6. सुरेश्वराचार्यशिष्य–सर्वज्ञात्ममुनिकृत–संक्षेपशारीरकग्रन्थ की टीका।
7. प्रस्थानभेद।
8. शिवमहिम्नस्तोत्र की हरिहरोभयपक्षीयटीका।
9. भक्तिरसायनम्।
10. शंकराचार्यकृतात्मबोधनामक।
11. गीता-निबन्ध।

निम्नलिखित ग्रन्थों के नाम सुने जाते हैं किन्तु ये सभी अप्राप्य हैं–

1. शाण्डिल्यसूत्रटीका।
2. हरिलीलाविवेक।
3. आनन्दमन्दाकिनी।

निम्नलिखित ग्रन्थ मधुसूदनकृत होने में संदिग्ध हैं–

1. जटाद्यष्टविकृतिविवृति।
2. सर्वविद्यासिद्धान्तवर्णनम्।
3. सिद्धान्तलेशस्य टीका।
4. राजप्रतिबोध।
5. वेदस्तुतिटीका।

मधुसूदनकृत ग्रन्थों में *अद्वैतसिद्धि, अद्वैतरत्नरक्षणम्, वेदान्तकल्पलतिका,*

सिद्धान्तबिन्दुगूढार्थदीपिका, भक्ति-रसायन, गीतानिबन्ध, महिम्न-स्तोत्रटीका नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं और आसानी से उपलब्ध हैं। इन आठों ग्रन्थों की रचना के पौर्वापर्य-काल के बारे में यद्यपि निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, तथापि उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में कुछ वर्णन मिलता है। जैसे *महिम्नस्तत्रोत्रटीका* में *वेदान्तकल्पलतिका* का उल्लेख है। *गीतागूढार्थदीपिका टीका* में *भक्ति-रसायन* का उल्लेख है। *भक्ति-रसायन* में *वेदान्त कल्पलतिका, अद्वैतसिद्धि* में *गीता-निबन्ध, भक्ति-रसायन* में *सिद्धान्त-बिन्दु, अद्वैतसिद्धि* में *सिद्धान्त-बिन्दु, गीता-टीका* में *सिद्धान्तबिन्दु* और *गीता-निबन्ध* एवं गीताटीका में *अद्वैत-सिद्धि* का उल्लेख मिलता है। अतः यह निश्चित किया जा सकता है कि मधुसूदन सरस्वती ने पहले *गीता-निबन्ध* ग्रन्थ लिखा। तत्पश्चात् *वेदान्तकल्पलतिका,* तीसरा *सिद्धान्त-बिन्दु,* चौथा *भक्ति-रसायन,* पाँचवाँ *अद्वैतसिद्धि,* छठा *अद्वैतरत्नरक्षण,* सातवाँ *गीता-टीका* और आठवाँ ग्रन्थ *महिम्नस्तोत्रटीका लिखा। तदुपरान्त प्रस्थानभेद आदि ग्रन्थों की रचना की।* इन ग्रन्थों का भी पौर्वापर्य काल नहीं जाना जा सकता है।

1. श्रीमद्भगवद्गीता की 'गूढार्थदीपिका टीका'

इस टीका में मधुसूदन ने तीन काण्डों में गीता-शास्त्र का विभाजन किया है। प्रथम से षष्ठ अध्याय तक कर्मकाण्डात्मक भाग सातवें से बारहवें अध्याय तक का भक्तिकाण्डात्मक किंवा उपासनाकाण्डात्मक तथा तेरहवें से अठारहवें अध्याय तक ज्ञानकाण्डात्मक भाग है।

इस टीका के शेष अध्यायों में कृष्ण-भक्ति-सूचक श्लोक हैं। इससे मधुसूदन सरस्वती के विषय में जो प्रवाद सुना जाता है वह सही प्रतीत होता है। ऐसा प्रवाद प्रचलित है कि मधुसूदन अद्वैतवादी संन्यासी थे। अद्वैतवादियों में उपास्य, उपासक एवं उपासना का भेद नहीं है।

आधे श्लोक में मैं वहीं कहूँगा जो करोड़ों ग्रन्थों में कहा गया है कि ब्रह्म सत्य है कि जगत् मिथ्या है। जीव तथा ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार सभी सिद्धान्तों और वचनों के प्रभाव से अद्वैतवादी में नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मुझमें कोई द्वन्द्व नहीं है न मैं देह हूँ, न मन, न बुद्धि, न ही पृथ्वीभूत तथा अव्याकृत आदि ही। इस प्रकार मधुसूदन निरन्तर ब्रह्म-विचारलीन रहते थे।

मधुसूदन कृष्ण-पूजन करते थे यह जानकर वाराणसी के अद्वैत मार्यावलम्बी कुछ संन्यासियों ने वहाँ आकर मधुसूदन से कहा—महात्मन्, आप अद्वैतवादी होकर द्वैत भावात्मक श्रीकृष्ण की उपासना कैसे करते हैं? यह सुनकर मधुसूदन ने शीघ्र ही एक श्लोक की रचना कर उन संन्यासियों को यह श्लोक सुनाया—

अद्वैतसाम्राज्यपथाधिरूढा—
स्तृणीकृताखण्डलवैभवाश्च।
हठेन केनापि वयं शठेन
दासीकृता गोपवधूवटेन ॥इति॥

यद्यपि हम अद्वैतमार्गावलम्बियों ने इन्द्र के राज्य को तणवत् तुच्छ मानकर छोड़ दिया है तथापि प्रसिद्ध गोपवधू विट गोपवधूरमण से कृष्ण ने शठता से अपने आकर्षण से अपने गुणों के जाल में बाँधकर बलात् हठपूर्वक हम सबको अपना दास बना दिया है। अब हम क्या करें।

इस प्रकार का उत्तर सुनकर वे संन्यासी बहुत संतुष्ट हुए। यद्यपि यह श्लोक *गीता-टीका* में नहीं है तथापि *श्रीमद्भगवत टीका* की *गूढार्थदीपिका टीका* के आरम्भ में यह श्लोक आता है—

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नीलंमहो धावति ॥

ध्यान और अभ्यास में अपने मन को लगाकर कुछ योगी लोग उस निर्गुण और निष्क्रिय ज्योतिःस्वरूप परमतत्त्व को यदि देखते हैं तो देखा करें किन्तु हमारे नेत्रों के चमत्कार के लिए वहीं एक यमुना के किनारे पर इधर-से-उधर घूमने वाले श्याम सुन्दर सदा-सदा के लिए बने रहें। इससे ज्ञात होता है कि अद्वैतवादी होने पर भी मधुसूदन की श्रीकृष्ण में पराभक्ति थी। और भी इसी *गीता टीका* के पन्द्रहवें तथा अट्ठारहवें अध्याय के अन्त में निम्नलिखित श्लोक में कहा है :—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरौष्ठात्,
पूर्णेन्दुसुन्दर मुखादर विन्दनेत्रात्।
कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥इति॥

बाँसुरी जिनके हाथ में विभूषित है और जिनका वर्ण नये मेघ के समान है। जिन्होंने पीताम्बर पहन रखा है और जिनके अधरोष्ठ बिम्बफल के समान हैं। जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर है। जिनकी आँखें कमल के समान सुन्दर हैं ऐसे श्रीकृष्ण से बढ़कर मैं किसी और तत्त्व को नहीं जानता।

इस प्रकार वंशीविभूषित इस रूपगुणविशिष्ट कृष्ण से उत्कृष्ट भिन्न किंवा श्रेष्ठ किसी तत्त्व को नहीं जानता हूँ। सगुण स्वरूप श्रीकृष्ण में उसकी अधिकताएँ होने से

चित्त बलात् ही वंशवर्ती हो जाता है।

इसी प्रकार *गीता-टीका* में अन्यत्र श्रीकृष्णभक्ति-सूचक वाक्य प्रचुरता से दृष्टिगोचर होते हैं। इससे भी मधुसूदन की कृष्ण में परमभक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।

2. अद्वैतसिद्धि

इस ग्रन्थ में मधुसूदन ने अद्वैतमत के निराकरण से विशेष रूप से माध्वमत के निराकरणपूर्वक अद्वैतवेदान्त के सैद्धान्तिक तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। यह ग्रन्थ विशाल भी है और दुर्बोध भी। संक्षेप में माध्वमत इस प्रकार है—

,प्रमतः वह तत्त्व दो प्रकार का है। सत् एवं असत्। सत् पुनः दो प्रकार है—स्वाधीन सत्, अधीन सत्। स्वाधीन सत् केवल विष्णु है। अधीन सत् पुनः चेतन आत्मा एवं अचेतन आत्मा के रूप में दो प्रकार का है। असत् वन्ध्यापुत्र रज्जुसर्पादि हैं। जगत् सत्य है। ईश्वर जीव से भिन्न है। जीवों में परस्पर भी भेद है। भेद सत्य है। जीव अणु है। ईश्वर विभु है। प्रमाण तीन हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम प्रमाण। अविद्या भावरूपिणी और दो प्रकार की हैं। 1. *जीवाच्छादिका* 2. *जीवईश्वराच्छादिका*। सारी अविद्या जीवाश्रित है। ईश्वराश्रित नहीं है। जीवाच्छादिक होने से ही अविद्या ने जीव के स्वात्मज्ञान को अवरुद्ध कर दिया है। जीवईश्वराच्छादिकता तथा अविद्या से जीव ईश्वर को नहीं देखता है। भगवद्भक्ति एवं भगवत्कृपा से जीव की मुक्ति होती है। केवलज्ञान से जीवन की मुक्ति नहीं होती। ईश्वर के दर्शन से जीव के कर्मक्षय होते हैं। ईश्वर इस जगत् का निमित्त कारण है। उपादान कारण प्रकृति है। लक्ष्मी प्रकृति की अधिष्ठात्री है। लक्ष्मी तथा विष्णु के मिलने से जगत् की उत्पत्ति होती है। जीव ईश्वर का नित्य दास है। मुक्ति में दुःखाभाव और सुख दोनों हैं। माध्वमत संग्रह के माध्वसम्प्रदाय के आचार्य द्वारा वर्णित श्लोक से ज्ञात होता है—

> श्रीमन्माध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत्तत्त्वतो
> भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
> मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं
> ह्याक्षादि त्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायेकवेद्यो हरिः ॥इति॥

श्री माध्वाचार्य के मत में भगवान् सर्वश्रेष्ठ हैं और जगत् तत्त्व से सत्य हैं। तथा जीव प्रभु के अनुचर हैं जीवों में नीच और उच्चभाव दोनों पाये जाते हैं। आत्मा सुख की शुद्ध अक्षुभूति को मुक्ति कहते हैं तथा शक्ति साधन हैं। इस प्रकार ब्रह्म जीव और प्रकृति इन तीनों का प्रामाणिक एवं पूर्ण ज्ञान प्रभु को है।

अद्वैतवेदान्त में सत्, असत्, सदसत् अनिर्वाच्य आदि तीन प्रकार का होता है।

सत् ब्रह्म है। असत् ख़रगोश के सींग, सद् असद् एवं अनिर्वाच्य रजतादि और स्वप्नप्रपंचवत् प्रतीयमान सम्पूर्ण जगत् हैं।

एक आत्मा ही ब्रह्म रूप है, जीव इससे अभिन्न है। अतः आत्मा तथा जीवात्मा में कोई भेद नहीं है। अनादि अविद्या जीवन स्वयं को ब्रह्म से भिन्न मानने के कारण दुःखी तथा स्वयं को बन्धनमय मानता है।

अविद्या से निवृत्ति ही मुक्ति है। अविद्या से निवृत्ति श्रुति वाक्यों के प्रभाव से अखण्डाकार के ज्ञान से होती है। अतः ब्रह्म आत्मोपनिषद् द्वारा आत्मसंविधान द्वारा ही जाना जा सकता है। अविद्या ब्रह्माश्रित एवं ब्रह्मविषयमय होती है। उसी अविद्या के कारण जगत् जीवभेद बन्ध इत्यादि सभी व्यवहार होते हैं। संक्षेप में प्रमाण—प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति, अनुपलब्धिभेद आदि छह प्रकार के होते हैं।

अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ में माध्वमत के कथित जगत् की सत्यता के निराकरण से जगत् में मिथ्या बताया गया है।

जीव और ब्रह्म के भेद हैं। जीवों का आपस में भी भेद है। जीवों के अणुत्व का माध्वमत में खण्डन करके ब्रह्म और आत्मा को एक माना है। उसी से जीवों का विभुत्व तथा भेद का अभाव ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से जीवों की मुक्ति मानी गयी है भक्ति द्वारा नहीं इत्यादि का प्रतिपादन किया गया है। नैयायिकों द्वारा वर्णित मुक्ति के स्वरूप का वर्णन करके उसके खण्डन से अविद्या से मुक्ति तथा आत्मा स्वरूप की मुक्ति में तारतम्य का खण्डन वर्णित किया गया है।

अद्वैतसिद्धि में चार परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में द्वैतमात्र के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके ब्रह्म को अद्वैतरूप में वर्णित किया गया है। यद्यपि मिथ्यात्व के प्रतिपादन-हेतु प्रथम परिच्छेद में बहुत अवान्तर विषय भी बताये गये हैं, तथापि प्रथम परिच्छेद का प्रतिपाद्य द्वैतमिथ्यात्वनिरूपणपूर्वक अद्वैततत्त्व की साधना ही है।

द्वितीय परिच्छेद में सांसारिक बन्धन से मुक्तिकारक ज्ञान को अखण्डार्थ विषयत्वपूर्वक बताया गया है। वहाँ बन्धनिवर्तक ज्ञान के अखण्डार्थ विषयत्व के प्रतिपादन में अनेक अवान्तर विषय आ गये हैं।

तृतीय परिच्छेद में उसी प्रकार अखण्डार्थ विषयकज्ञान का साधन बताया गया है। वहाँ श्रवण का तथा मनन तथा निदिध्यासन का असंभव होना, विपरीत होना एवं निवर्तक होना आदि का वर्णन किया गया है। यह *अद्वैतसिद्धि* ग्रन्थ की विशेषता है कि अनादिकाल से अद्वैत मत पर जितनी आशंकाएँ उठायी गईं उनका निराकरण न वितण्डारूप है, न वितण्डाप्रधान है। चित्सुखाचार्य प्रणीत प्रत्यक्ष—तत्त्वदीपिका जल्पप्रधान श्रीहर्ष प्रणीत *खण्डनखण्डखाद्य* वितण्डाप्रधान है। *अद्वैतसिद्धि* वाद प्रधान है। यद्यपि *अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ* दूसरे मतों का निराकरण बहुलता से ही करता है तथापि दूसरों के मत का निराकरण करने की अपेक्षा यह ग्रन्थ प्रधानता से वेदान्ततत्त्वों का प्रतिपादन करता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही क्या है :—

श्रद्धाधनेन मुनिना मधुसूदनेन
संग्रह्याशास्त्रनिचयं रचितातियत्नात्।
बोधाय वादिविजयाय च सत्वराणा—
मद्वैतसिद्धिरियमस्तु मुदे बुधानाम् ॥इति॥

अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ में अद्वैतवेदान्त के सिद्धान्तों का बहुलता से प्रतिपादन किया गया है। साथ ही अद्वैत-वेदान्त के समकालीन प्रतिद्वन्द्वियों के मत के निराकरण हेतु बहुत सी युक्तियाँ उपस्थापित की गयी है।

इस एक ग्रन्थ से त्रिविधा अधिकारी उपकृत होते हैं। जिन्हें अद्वैतवेदान्त के प्रति त्वरित जिज्ञासा है वे इस ग्रन्थ से शीघ्र ही अद्वैत सिद्धान्त को जान जाएँगे। जो प्रतिवादी पर शीघ्र विजय चाहते हैं वे भी इस ग्रन्थ में बतायी गयी परपक्ष खण्डन रीति को जानकर शीघ्र ही प्रतिपक्षी पर विजय पा लेंगे। जो अद्वैतसिद्धान्त के ज्ञाता हैं उन्हें इस ग्रन्थ में उपन्यस्त सिद्धान्तों से प्रसन्नता होगी। इस प्रकार यह ग्रन्थ सबके लिए उपकारक होगा।

अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ की रचना की समाप्ति से पूर्व भगवान् विमुक्तात्मक इष्टसिद्धि मण्डनमिश्र रचित *ब्रह्मसिद्धि* एवं सुरेश्वराचार्य कृत *कर्म्यसिद्धि*। *अद्वैत ब्रह्मसिद्धि* नामक ग्रन्थ कश्मीरी सदानन्द योगीन्द्र द्वारा विरचित है।

ये सदानन्द योगी सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। इस प्रकार *अद्वैत ब्रह्मसिद्धि ग्रन्थ अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ* के बहुत बाद में रचा गया।

3. प्रस्थानभेद

इस ग्रन्थ में सरस्वतीपाद ने सभी शास्त्र श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, न्याय मीमांसा, का अद्वितीय ब्रह्म''में तात्पर्य वर्णित किया है।

अक्षपाद कणाद, कपिलादि द्वैतवादियों ने भी अद्वैत का तात्पर्य प्रतिपादित किया है। वे मुनि भ्रान्त नहीं थे। यह कहकर मधुसूदन ने आपाततः अद्वैत में चित्त साधन के असमर्थों का अविकार भेद न्याय वैशेषिक सांख्य योग मीमांसा शास्त्रों के द्वैतभाव प्रकाशन पर भी अन्तः पृष्ठभूमि में अद्वैत ही है यह तात्पर्य बताया है।

4. महिम्नः स्तोत्रटीका

भगवान् विष्णु और भगवान् शिव के प्रति स्तोत्र की व्याख्या की जाती है। इस स्तोत्र के 7वें श्लोक की व्याख्या में सभी प्रस्थानों के भेद व प्रयोजन को दिखाकर शेष सम्पूर्ण अद्वितीय परमेश्वर जो वेदान्त द्वारा प्रतिपादित हैं उनका तात्पर्य स्पष्ट किया गया है। लिखा है कि वो मुनि भ्रान्त नहीं थे वे सर्वज्ञ थे लेकिन बाहर के विषयों के

वर्णन में चतुर पुरुषों का परम् पुरुषार्थ में प्रवेश नहीं है, इस नास्तिक मत के निराकरण में प्रकार भेद प्रदर्शित किया है।

5. भक्ति रसायन

इस ग्रन्थ में मधुसूदन ने स्वतन्त्र रूप में भक्ति का पुरुषार्थत्व प्रदर्शित किया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में प्रत्येक जैसे स्वतन्त्र पुरुषार्थ है तद्वत् भक्ति भी स्वतन्त्र पुरुषार्थ है। अतएव अद्वैत की भक्ति पाँचवाँ पुरुषार्थ है। उनके जीवनाख्यान से ज्ञात होता है कि नवद्वीप-गमन-काल में मधुसूदन की द्वैतमत में निष्ठा थी। जीवन-चरित से यह भी ज्ञात होता है कि काशी-गमनोपरान्त वेदान्त के अध्ययन के पश्चात् अद्वैतमत में इनकी निष्ठा हुई। तदुपरान्त श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों के आलोचन से कृष्ण-भक्ति और विशेषतः भक्तिवाद में निष्ठा हुई। यद्यपि भक्ति में भी उनका अद्वैततत्त्व से ही तात्पर्य था तथापि भक्तिगीतादि वाक्य प्रदर्शन में हमने बताया है कि भजनानुष्ठान में ये सदा निमग्न रहते थे।

भक्तिरसायन की विषयवस्तु दर्शन से भी पुनः यह निश्चित होता है कि मधुसूदन की शुद्ध भक्ति में थी, निष्ठा थी। शास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ ही प्रायः ख्यात हैं। महाप्रभु चैतन्यदेव ने परमभक्तिरूप पंचम पुरुषार्थ वर्णित किया है। उन्होंने *शिक्षाष्टक* में प्रार्थना की है—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम तु जन्मनि जन्मनीश्वरे भवतात् भक्ति हैतुकी त्वयि ॥

हे प्रभु मुझे धन, जन, सुन्दरी, कविता, जगदीश आदि किसी की कामना नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि जन्म-जमान्तर में मुझे आपकी और अहेतुकी भक्ति प्राप्त हो।

और गर्ग-मुनिकृत कृष्ण-स्तोत्र से भी यही ज्ञात होता है। गर्ग बोले—

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन।
प्रसन्नो भव मामीश देहि दास्यं पदाम्बुजे ॥
त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन किं मे प्रयोजनम्।
देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रदाम् ॥
अणिमादिषु सिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो।
ज्ञानतत्त्वेऽन्यतत्त्वे वा काचिन्नास्ति स्पृहा मम ॥
इन्द्रत्वे या मनुष्यत्वे स्वर्गभोगे फले चिरम्।
नास्ति मे मनसो वाञ्छा त्वत्पादसेवनं विना ॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमीप्सितम्।
नाहं गृह्णामि ते ब्रह्म स्त्वत्पादसेवनं विना ॥

गोलोके वापि पाताले वासे तुल्यं मनोरथम्।
किन्तु वे चरणाम्भोजे सततं स्मृतिरस्तु मे ॥ इत्यादि

हे कृष्ण! ब्रह्माण्ड के स्वामी भक्तों के भ्रम को दूर करने वाले आप मुझ पर प्रसन्न होइये और मुझे अपने चरण कमलों की दासता प्रदान कीजिए।

आपके पिता ने मुझे धन दिया है लेकिन मेरा इससे कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे तो इससे हे कृष्ण! निश्चल भक्ति प्रदान कीजिए जिससे जिसमें भक्तों को अभय प्राप्त होता है। हे प्रभु, अणिमादि आठ सिद्धियों में योगों में मुक्तियों में ज्ञानतत्त्व में अथवा किसी और तत्त्व में मेरी तनिक भी आस्था नहीं है। हे कृष्ण! मुझे इन्द्रत्व प्राप्त करने में, मनुष्यत्व प्रदान करने में और अनन्तकाल तक स्वर्ग भोगने में भी कोई ऐषणा नहीं है केवल कामना है तो ये कि मैं आपके चरण कमलों की सेवा करूँ।

आपके चरणों की सेवा के बिना हे कृष्ण! मुझे सालोक्य सृष्टि और सामीप्य तथा सारूप्य की भी कामना नहीं है और भी मेरा कोई मनोरथ नहीं है।

मैं न गोलोक चाहता हूँ, न पाताल चाहता हूँ और न ही मुझे कोई आँर बड़ा मनोरथ प्रिय है। मैं तो केवल ये चाहता हूँ कि आपके चरण कमलों में मेरी भक्ति और स्मृति सदा बनी रहे।

इस स्तोत्र में गर्ग मुनि ने भगवच्चरणकमल रूप भक्ति की धर्मादि अन्य पुरुषार्थों की अपेक्षा श्रेष्ठता व्यंजित की है। उनके पंचम-पुरुषार्थ-रूप चैतन्यदेव महाप्रभु द्वारा कही गयी भक्ति का अध्याहार होता है।

भक्तिरसायन में मधुसूदन में भगवद्भक्ति को स्वतन्त्र पुरुषार्थ बताया है और *भक्तिरसायन* के प्रथमोल्लास में प्रथम श्लोक की अपनी गीता टीका में कहा है—पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत किंवा स्वतन्त्र भक्तियोग पुरुषार्थ परमानन्द स्वरूप निर्विवाद है। इस वाक्य में प्रथमतः पुरुषार्थतुष्टय के अन्तर्गत वर्णन करके तदनन्तर स्वतन्त्र रूप से उसे चारों पुरुषार्थों से भिन्न बताकर भक्ति को पंचम पुरुषार्थ निर्धारित किया है।

यह भक्ति सायुज्य मुक्तिरूप नहीं है। मधुसूदन सरस्वती ने उसी ग्रन्थ में कहा है—

न चेयं भक्तिः सायुज्यमुक्तिरूपा।
यत् उक्तं मधुसूदनसरस्वतीपादैस्तत्रैव
द्रुते चिते प्रविष्टा या गोविन्दकारता स्थिरा।
सा भक्तिरित्यभिहिता विशेषस्त्वधुनोच्यते ॥ (*भक्तिरसायनम्*-2/1)

शीघ्र ही हृदय में प्रविष्ट होकर जो गोविन्दाकार में स्थित हो जाती है, वह भक्ति कही गयी है और विशेष रूप से आज भी कही जाती है।

द्रवीभाव रूप चित्त में गोविन्दाकार रूप में जो स्थित है वह भक्ति है। ईश्वर के साथ जीव का एकीभाव सायुज्य मुक्ति है। वहाँ चित नहीं होता है जिससे चित की गोविन्दाकारता हो सके।

और मधुसूदन सरस्वती ने *भक्तिरसायन* में भक्ति एवं ब्रह्मविद्या का स्वरूप साधन फलभेद प्रदर्शित करने मुक्ति से भक्ति की विलक्षणता साध्य-साधन-भाव से बतायी है। जैसे—नहीं तो नामान्तर से ब्रह्मविद्या ही भक्ति कही गयी है इत्यादि रूप में पूर्वपक्षियों द्वारा आशंका किये जाने पर उन्होंने इसका खण्डन किया है। भक्ति एवं ब्रह्मविद्यास्वरूप साधन फलाधिकार से विलक्षण होती है। मन में भक्ति द्रवीभावपूर्वक में भगवदाकार रूप में तथा सविकल्पवृत्ति रूप होती है। ब्रह्मविद्या मन में द्रवीभावानुमेत अद्वितीयात्म अगोचर निष्काम होती है। भक्ति का साधन भगवद्गुणों की गरिमा-विषयक ग्रन्थानुश्रवण है। तत्त्वमणि वेदान्त का महावाक्य ब्रह्मविद्या का साधन है। भक्ति का फल भगवत् सम्बन्धी प्रेम का प्रकर्ष है। ब्रह्मविद्या का फल सभी अर्थ मूलों के अज्ञान की निवृत्ति है। भक्ति पर प्राणिमात्र का अधिकार है। ब्रह्मविद्या पर साधन चतुष्टय सम्पन्न परमहंस परिव्राजक का अधिकार है। (*भक्तिरसायन टीका* 1/1)

भक्तिरसायन में धर्म, अर्थ, कामादि पुरुषार्थों में भक्ति पुरुषार्थ को मोक्ष हेतु परमपुरुपार्थ वताया गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि सायुज्य मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को स्वतन्त्र बताकर द्वैतभावावस्थित भक्ति में मधुसूदन सरस्वती की निष्ठा की।

भक्तिरसायन की टीका में कहा गया है—*अद्रुत चित* का निर्वेदपूर्वक ज्ञान तत्त्वज्ञान है। द्रुत चित भगवत्कथा श्रवणादि भागवतधर्म श्रद्धापूर्वक भक्ति दोनों का वर्णन किया गया है।

इसके द्वारा भक्ति और ज्ञान की विलक्षणता बतायी गयी है। भक्ति का फल प्रेमप्रकर्ष और ज्ञान का फल मुक्ति बताया है। भक्ति ज्ञानरूपा नहीं है, न ही मुक्तिरूपा। उन्होंने मुक्ति से भक्ति की पृथक्ता स्पष्ट बतायी है। उन्होंने *भक्तिरसायन* में कहा है तथा *भक्तिरसायन* के प्रथम श्लोक में ही भक्ति का पुरुषार्थत्व व्यक्त किया है—

> नवरसमिलितं वा केवलं वा पुमर्थ
> परममिह मुकुन्दे भक्तियोगं वदन्ति।
> निरुपमसुखसम्बिद्रूपमस्पृष्टदुःखं
> तमहमखिलतुष्ट्यै शास्त्रदृष्ट्या व्यनज्मि ॥ (*भक्तिरसायनम्*-1/1)

चाहे वह नौ रसों से युक्त हो अथवा परम पुरुषार्थ से युक्त हो, भगवान् कृष्ण के प्रति इसी को परम भक्तियोग कहते हैं।

मैं परम सुख सच्चिदानन्द सुख स्वरूप प्रभु की प्रसन्नता के लिए इस शास्त्र द्वारा अपने भाव व्यक्त करता हूँ। संविद् रूपत्व कहने से भक्ति से ज्ञान स्वरूप का वर्णन होता है ऐसा नहीं है। भक्ति के रस स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए सुख संविद् रूप का वर्णन किया गया है। यही भक्ति के रस तात्पर्य वर्णन का अभिप्राय है। *भक्ति रसायन* में कहा है, भगवान् की गुण गरिमा-वर्णन जिसमें किया गया हो ऐसे ग्रन्थ का श्रवण करने से उत्पन्न तन्मय मनोवृत्ति में सर्वसाधनफलरूप भगवदाकार

रूप तथा विभावानुभाव-व्यभिचारी भाव से संयुक्त रस रूप में विभानुभाव संचारी व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है और पूर्वोक्त ग्रन्थ के उद्धरण से भक्ति के स्वरूप साधन तथा फल के भेद-प्रदर्शन के यहाँ ब्रह्म और आत्मा की एकता रूप ज्ञान निष्ठा ही भक्ति है यह निर्णय किया है। इस प्रकार *भक्ति-रसायन* में बहुत सारी युक्तियाँ भक्ति और मुक्ति की विलक्षणता सिद्ध करने के लिए बतायी गयी हैं और साधन-भक्ति तथा साध्य-भक्ति और रूप-भक्ति ये भेद बताये गये हैं। विस्तार के भेद से यहाँ तद्विषयक वर्णन नहीं किया गया है। विशेष अनुसंधान में उत्सुक विद्वानों को इसका ज्ञान वहीं से प्राप्त करना चाहिए। उससे पहले और वेदान्त अध्ययन आदि के बाद मधुसूदन ने ब्रह्मविद्या के फलस्वरूप मुक्ति को ही परमपुरुषार्थ के रूप में माना है। इसके अनन्तर श्रीमद्भगवत् आदि ग्रन्थों को पढ़ने और अनुशीलन से बाद भक्ति के अनुशीलन के परमपुरुषार्थ को जाना जाता है। इस अनुमान में भी इन्होंने इसका प्रयोग किया है जिसका वर्णन नीचे किया जा रहा है—

श्रीमद्भगवत् की व्याख्या के बाद मधुसूदन ने *भक्ति रसायन* का प्रणयन किया क्योंकि उसमें भागवत में कहे गये भक्तिसूचक श्लोकों को उद्धृत किया गया है। अतः अनुमान किया जाता है अद्वैतवादी होने पर भी मधुसूदन में द्वैतभाव से भक्ति को स्वीकार किया इसीलिए तुलसीदास में उनकी श्रद्धा थी। तुलसीदास ने द्वैतभाव से राम की भक्ति करते हुए राम से साक्षात्कार किया था ऐसा उनके जीवन-चरित और *रामचरितमानस*, दोनों ग्रन्थों से ज्ञात होता है। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि मधुसूदन की सभी भारतीय साधक सम्प्रदायों के प्रति समन्वय बुद्धि थी। यद्यपि *अद्वैतसिद्धि* आदि अद्वैतभाव प्रकाशक ग्रन्थों में परमत-निराकरणपूर्वक अद्वैतमत की स्थापना की गयी है तथापि ऐसा लगता है कि ऐसा उन्होंने गुरु के आदेश से किया है। *अद्वैतसिद्धि* ग्रन्थ के आरम्भ में उन्होंने कहा है—

> श्रीरामविश्वेश्वरमाधवानामैक्येन साक्षात्कृतमाधवानाम्।
> स्पर्शेन निर्धूततमोरजोभ्यः प्रादोत्थितेभ्योऽस्तु नमो रजोभ्यः ॥इति॥

भगवान् कृष्ण का साक्षात् प्राप्त कर लेने वाले श्रीराम (रामतीर्थ) श्री विश्वेश्वर तथा श्री माधव इनके पवित्र चरणों की रज के स्पर्श से उठी हुई जो रज है उसको मैं नमस्कार करता हूँ।

मधुसूदन के तीन गुरु थे—श्रीरामतीर्थ—वेदान्त शास्त्रगुरु, माधव सरस्वती—पूर्वमीमांसाशास्त्रगुरुः, तथा विश्वेश्वरसरस्वती—संन्यास गुरु थे। ब्रह्म व आत्मा के एकत्वानुसन्धानरूपिणी ज्ञाननिष्ठात्मिका भक्ति अद्वैतवाद की ही भक्ति है। *विवेकचूड़ामणि* में कहा गया है—

> मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
> स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥इति। (*विवेकचूड़ामणि*-32)

मोक्ष के सभी प्रकार के साधनों में भक्ति का ही सर्वोच्च स्थान है। आत्म स्वरूप को पहचान लेना ही परमभक्ति कही गयी है।

श्री मधुसूदन ने *भक्तिरसायन* में ऐसी भक्ति वर्णित नहीं की है। इससे स्पष्ट होता है कि अद्वैतवादी होने पर भी मधुसूदन की द्वैतभाव में स्थिति भक्ति में निष्ठा थी। *भक्तिरसायन* में मधुसूदन में भक्ति-रस की अन्य रसों की अपेक्षा श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

6. अद्वैतरत्नरक्षणम्

मधुसूदन ने अद्वैत-तत्त्व के प्रतिपादन-हेतु इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। उन्होंने इस ग्रन्थ में द्वैतमत का निराकरण और वेदान्त दर्शन का आरम्भ प्रतिपादित किया है। क्रमानुसार श्रुति प्रामाण्य का प्रतिपादन। श्रुतियों का भेदपरक खण्डन, सब बुद्धियों में भेद विषय का न होना, अन्योन्यभावत्व की निरुक्ति का भंग, निर्विकल्पक भेद-विषयक का भंग, अपनी विशेप वृत का आत्माश्रय दोषों का प्रतिपादन, विशिष्ट वृत्ति में सम्बन्ध की अयुक्तताभेद, वृत्ति में अभेद के आभास का खण्डन, भेद के स्वरूप का खण्डन, भेद की पारमार्थिकता का खण्डन, अद्वैत ब्रह्मनिष्ठा का प्रतिपादन भेद निषेधादि का अवर्णन कर्मकाण्डीय विधि वाक्यों का कभी अद्वैत में पर्यवसान का सर्वेकता में भी सगुणता के होने से सब प्रकार के व्यवहार का वर्णन, व्यावहारिकता का निर्वचन, असम्भव शंकाओं का निवारण, वेदादि शास्त्रों द्वारा अविद्या के स्वरूप का समर्थन, भ्रम मात्र विषय द्वारा बाधित व्यावहारिक स्वरूप का विवेक, प्रपंच सूत्र अनुमान का खण्डन, इत्यादि विषयों से अद्वैत तत्त्व के निरूपण द्वारा अद्वैत मत विलम्बन से है जीवन्मुक्ति है इसके अनन्तर ही केवल मुक्ति मिलती है यह बताया गया है। यहाँ अद्वैतरत्नरक्षणम् ग्रन्थ में ग्रन्थकार द्वारा उदयनाचार्यमकृत *न्यायकुसुमांजली* के पंचम स्तबक स्थित इत्येव श्रुतिनीत आदि श्लोक का तथा निसर्ग सुन्दरे श्लोक का उदाहरण देने से भगवद् भक्ति में तत्परता प्रदर्शित की गयी है। यह हमने पहले बता दिया है।

7. सिद्धान्तबिन्दु

मधुसूदन ने इस ग्रन्थ में भगवान् शंकराचार्य द्वारा रचित दस श्लोकों की व्याख्या की है। इस ग्रन्थ में प्रथम अध्याय में शास्त्र के विषय प्रयोजन प्रतिपाद्य सभी वेदान्त वाक्यों का ब्रह्मात्मत्व में समन्वय प्रदर्शित किया है। प्रतिपाद्य विषय में विरोध छोड़कर ब्रह्मात्व के मूल ज्ञान साधन को बताकर उनके फलस्वरूप मुक्ति का वर्णन किया है। परिणामतः वेदान्त दर्शन के तात्पर्य विषय रूप से संक्षिप्त व्याख्यान देते हुए ग्रन्थकार ने मन्द व मध्यम बुद्धिवालों के लिए बहुत उपकार किया है।

8. वेदान्तकल्पलतिका

इस ग्रन्थ में चार्वाक, बौद्ध, जैन, वैशेषिक, न्याय शास्त्री प्रभाकर भट्ट सांख्य पातंजल त्रिदण्डी, पाशुपत, वैष्णव, हिरण्यगर्भ आदि के मतानुसार आत्मस्वरूप मुक्ति स्वरूप और मुक्ति के स्वरूप को क्रम से प्रदर्शित करके क्रमानुसार ही उनका निराकरण तथा उपनिषदों के मतानुसार आत्म-स्वरूप एवं मोक्ष के सिद्धान्त का वर्णन करते हुए उसके साधन-भूत ज्ञान का अनेकविध वेदान्त वाक्यों का विचार करके प्रतिपादन किया है।

इन बहुमूल्य ग्रन्थ रत्नों में मधुसूदन से सभी शास्त्रों का ज्ञान प्रतिष्ठित किया है। भगवद्गीता शास्त्र की टीका *गूढार्थदीपिका* के अठारहवें अध्याय में पूर्वमीमांसा पदार्थ के वर्णन से उस शास्त्र के विशिष्ट ज्ञान का परिचय मिलता है *अद्वैतसिद्धि* के प्रथम परिच्छेद में वाक्यार्थनिरूपण प्रसंग से भट्ट व न्याय मत का विशिष्ट ज्ञान व्यंजित होता है। उनके वंशजों के लेखादि से ज्ञात होता है कि मधुसूदन ने भी बाल्यकाल में कलाप व्याकरणादि का अध्ययन किया था। परन्तु मधुसूदन-विरचित ग्रन्थों में सर्वत्र पाणिनि सूत्रों के उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने पाणिनि व्याकरण बाद में पढ़ी।

भक्तिरसायन में शृंगारादि के अलावा *भगवद्भक्ति* के रस की श्रेष्ठता के प्रतिपादन के कारण रस स्वरूप उसके विभावादि के निरूपण से मधुसूदन के अलंकार शास्त्रविषयक ज्ञान का परिचय मिलता है। अतः आदि शंकराचार्य के अलावा एवं विद्यारण्य रूप दूसरे शंकराचार्य के अलावा सर्वत्र तीसरे शंकराचार्य के इस प्रवाद को जो सुना जाता है, वह मिथ्या नहीं है। इनका वेदान्त ज्ञान सम्पूर्ण वेदान्त ग्रन्थों में विश्रुत है।

इस प्रकार मधुसूदन के इस चरित्र को अयोग्य एवं अनजान होते हुए जिस प्रकार से निरूपित किया है उसे मैं भगवान् के चरण कमलों में अर्पित करता हूँ। कहाँ तो लोकोत्तर एवं सर्वज्ञ मधुसूदन का वृत्तान्त है कहाँ मूर्ख विचारा में दामोदराश्रम। मधुसूदन के चरित्र का वर्णन करने में सर्वथा अक्षम मैंने एक लोभ से उनके सद्गुणों के वर्णन का प्रयास किया है।